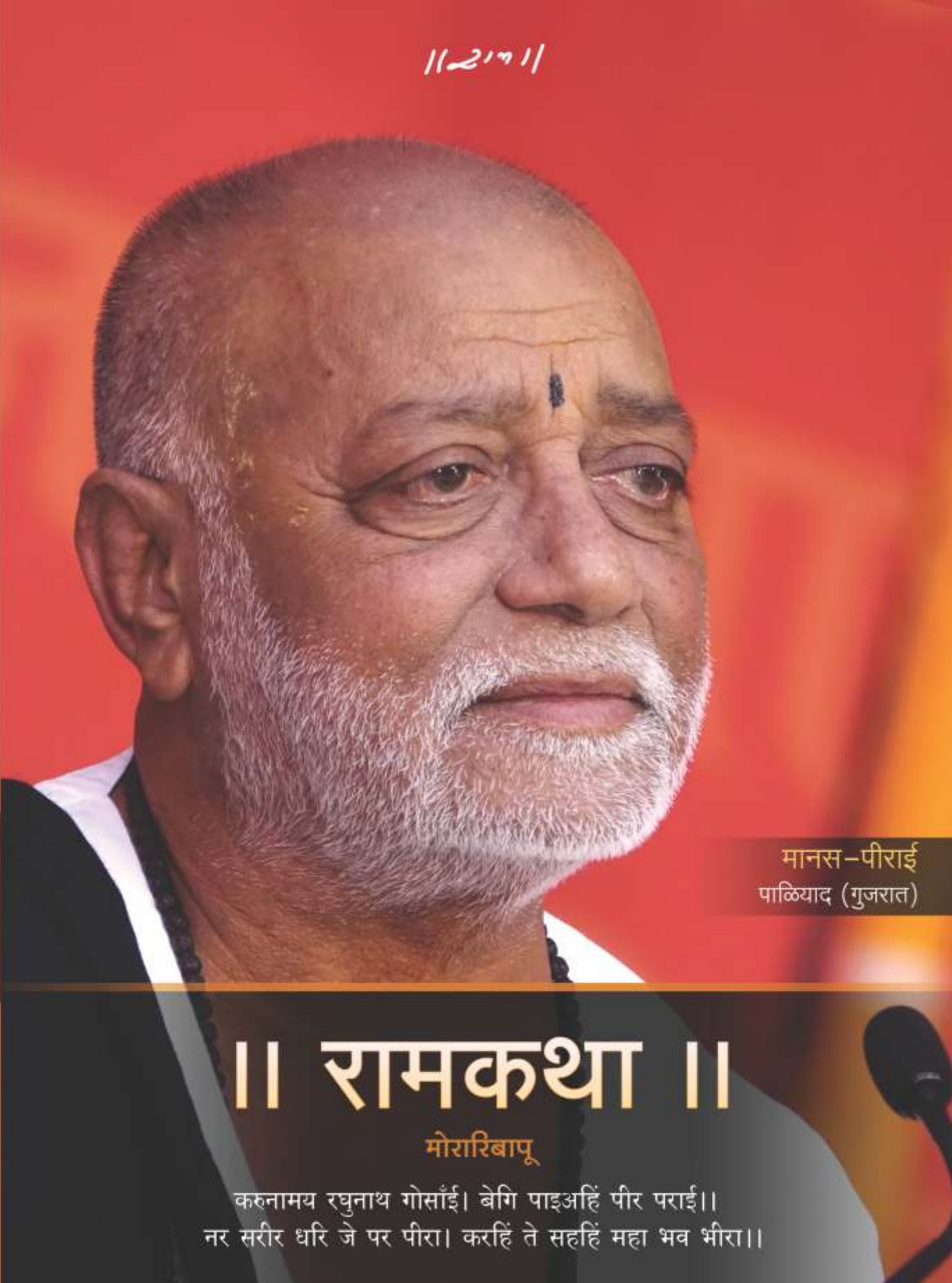

॥૮૧૭॥

मानस–पीराई

पाळियाद (गुजरात)

।। रामकथा ।।

मोरारिबापू

करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहिं पीर पराई।।
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।

प्रेम-पियाला

।। रामकथा ।।
मानस-पीराई

मोरारिबापू
पाळियाद (गुजरात)
दिनांक : २८-०१-२०१७ से ०५-०२-२०१७
कथा-क्रमांक : ८०६

प्रकाशन :
मार्च, २०१९

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

हिन्दी अनुवाद
डॉ. जी.एम.चंदेल

रामकथा पुस्तक प्राप्ति सम्पर्क-सूत्र :
ramkathabook@gmail.com
+91 704 534 2969 (only sms)

ग्राफिक्स
स्वर एनिम्स

मोरारिबापू ने विहळानाथ की पावन धरा पाळियाद(गुजरात) में दिनांक २८-१-२०१७ से ५-२-२०१७ के दिनों में रामकथा का गान किया। पीर की भूमि पर आयोजित यह रामकथा 'मानस-पीराई' पर केन्द्रित हुई। इससे पहले बापू ने पोखरण में रामदेवपीर की भूमि पर कथा की थी। और कहा जाता है कि भगवान रामदेवपीर समाधि के वक्त ऐसे वचन बोले थे कि अब पोखरण से निकलकर में पाळियाद में प्रगट होउंगा। मतलब एक अर्थ में कथा के माध्यम से बापू की पोखरण से पाळियाद तक पवित्र यात्रा हुई।

बापू की यह ७८६वीं कथा थी। इस संदर्भ में दिल्ही के एक पत्रकार ने बापू को कहा था कि ७८६ का अंक ईस्लाम धर्म साथ जुड़ा हुआ है और आपने पाकिस्तान में कथा गाने का मनोरथ किया था तो यह कथा आपको करबला में या कोई मुस्लिम राष्ट्र में करनी चाहिए। उसके प्रतिभाव में बापू ने कहा था कि वैसे तो करबला में यह कथा का आयोजन हुआ था लेकिन बारबार बदलते वहां के आंतरप्रवाह एवम् विचारधारा की टक्कर इत्यादि कारण वहां के मौलवीओं-धर्मगुरुओं और वहां की सरकार की ओर से सलाह मिली कि इस समय यहां कथा का आयोजन अनुकूल नहीं है। और मुझे क्या पता कि यह कथा का योग्य स्थान पाळियाद ही होगा! क्योंकि यह भी पीराणा ही है। कोई पीर की भूमि में कथा होनी चाहिए ऐसी बात थी। और कैसे भी अस्तित्व ने ऐसा निर्माण किया कि पाळियाद में विहळानाथ की भूमि पर कथा का आयोजन हुआ!

'भगवद्गोमंडल' में दिये गये पीर और पीराई के अर्थों का बापू ने इस कथा में विवरण किया। तदुपरांत बापू ने 'मानस' के आधार पर भी पीर के गुण-लक्षण रेखांकित किये। 'पर पीड़ा को तत्क्षण जाने वह पीर।' इस तरह पीर का परिचय देते हुए बापू ने कहा कि साधुपुरुष साधक को कुछ उलटे सूत्र देते हैं तब कहते हैं कि पीड़ा पैदा करे वो पीर। किसको पीर-पयगंबर कहोगे? जो पीड़ा प्रगट करे। कौन-सी पीड़ा? हम सब में परमात्मा के विरह की पीड़ा प्रगट करे उसका नाम पीर। सामान्य पीड़ाओं को हरे और एक महाविरह, परमतत्त्व के वियोग की एक महापीड़ा पैदा करे उसका नाम पीर है।

'हमारे लिए तो 'रामायण' पीरों का पीर है। 'मानस' स्वयं पीर है।' इन शब्दों में 'मानस' का माहात्म्य निर्दिष्ट कर बापू ने निवेदन किया कि 'रामायण' कहता है, जो पांच के प्राणों की रक्षा करे उनको पीर समझना। 'रामायण' में पांच प्राण है। एक प्राण है सुग्रीव। दूसरा प्राण है बंदर-भालु। तीसरा प्राण है लक्ष्मण। चौथा प्राण है भरत। और पांचवां प्राण है माँ जानकी। यह पंच प्राण है। यह पंच प्राणों को बचाने का कार्य मेरे महावीररूपी पीरों के पीर ने किया। इसलिए हनुमानजी पीरों का पीर है, महावीर है।

सुविदित है कि बापू रामकथा के माध्यम से सामाजिक जागृति का उपकारक कार्य भी करते हैं। यहां भी बापू ने ग्रामजनों को व्यसनों और वहमों से मुक्त होने की अपील करते हुए कहा कि मैं किसी को संकल्प नहीं कराता। बिनती अवश्य कराता हूं। मुझे आप से अपील करनी है, बिनती करनी है कि व्यसन थोड़ा कम हो। ऐसा-वैसा खाये ना। व्यसन से दूर रहे। अंधश्रद्धा थोड़ी कम हो।

'मानस-पीराई' रामकथा निमित्त यूं पीर और पीराई के विषय में बापू का विशिष्ट दर्शन प्रगट हुआ।

– नीतिन वडगामा

मानस-पीराई : १

सावधान करे वो साधु

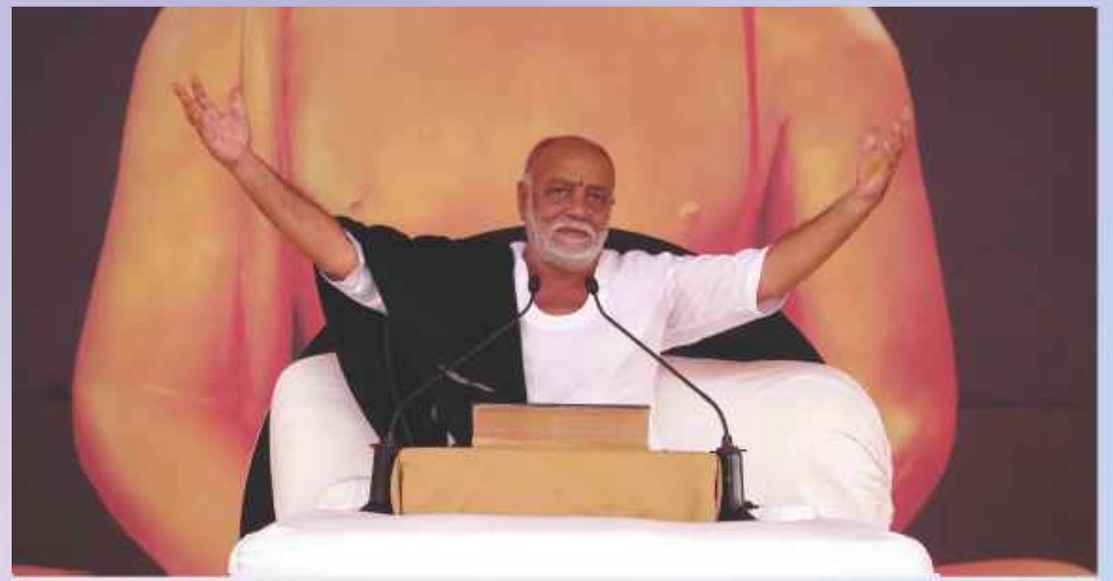

बाप! विहळानाथ की इस पावन धरती पर नौ दिन की रामकथा का आरंभ हो रहा है तब अपनी खूब हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करके इस अति निर्मल विहळ परंपरा को प्रणाम करता हूं। पूज्यपाद विसामणबापू के नाम से शुरू हुई, वैसे तो पोखरण से पाळियाद तक की यह यात्रा है। कुछ दिन पहले पोखरण में कथा कहने का अवसर मिला था भगवान रामदेवपीर की भूमि पर। और हम सब जानते हैं कि भगवान रामदेवपीर जब समाधि लेते हैं तब एक सूचना देते हैं कि कोई इसे खोलना नहीं। यदि खोलोगे तो ठीक नहीं! और वो हुआ। जो भी हो सो! पर भगवान रामदेवपीर ने ऐसे वचन कहे थे कि अब पोखरण से निकलकर पाळियाद तक की एक पवित्र यात्रा है। ऐसे इस स्थान में भगवान विहळानाथ ठाकर, उस पावन परंपरा को यहां की गद्दी पर पधारने के लिए, उस पूरी महंत परंपरा को उस पूरी भक्त और संत परंपरा को और आदि से लेकर वर्तमान में इस गद्दी पर बैठकर सेवाकार्य कर रही अपनी ये पूज्य माँ-निर्मला माँ तक की इस पूरी परंपरा को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। अमराबापू का मैं स्मरण करता हूं। नानकुबापू ने भी बात की थी कि इस भूमि में रामकथा खूब भरी पड़ी है। और जहां रामकथा का इतना गहरा मूल हो वहां मेरे मन में होता रहता था कि एक बार हमें वहां जाना चाहिए। और वह आधे घंटे के लिए नहीं, नौ दिन के लिए। इस विहळानाथ की भूमि पर नौ दिन रामकथा गाने का मुझे एक अवसर प्राप्त हुआ है। ये समाधियां रामकथा सुनेगी। और ऐसे पावन प्रसंग पर अपने सेवाधर्म के जो स्थान है उन सब में से पधारे ऐसे मेरे सभी पूजनीय संत-महंतगण को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। दरबारबापू और एक युवान ये भईलुभाई। सभी वस्तु होगी जब एक दृष्टि हो, एक विज़न हो तब मनुष्य कैसा सुंदर वातावरण खड़ा कर सकता है। माँ के आशीर्वाद से, समस्त परंपरा के उत्तम आशीर्वाद से सब ने साथ मिलकर ऐसा सुंदर आयोजन किया है। मैं प्रसन्नचित्त हूं। उन्हें खूबखूब साधुवाद, निमित्तमात्र के लिए जो यजमान बने हैं। मैं नाम भूल गया! गोपालभाई, उनका भी भाग्य कि ऐसे स्थान पर और ऐसे एक प्रेमयज्ञ में वो निमित्त बने। परंतु उससे भी अच्छा विचार यह है कि माँ ने कहा कि सभी सेवाएं बांटी जानी चाहिए। छोटे-से छोटा मनुष्य भी ऐसा माने की ये कथा मेरी है। ऐसे भाव के साथ इस कथा का आयोजन हुआ है। इस विचार का स्वागत करता हूं। यहां उपस्थित विविध क्षेत्र के सभी आदरणीय महानुभाव, आप सभी श्रोता भाई-बहनों। आप सभी को व्यासपीठ से मेरा प्रणाम।

मुझे खबर न थी, पोखरण रामदेवपीर की भूमि पर कथा करने गया तब मुझे विशेष मालूम पड़ा कि रामदेवपीर बापा ये ही वापस पाळियाद में एक रूप धारण करके पधारते हैं। और दिल्ही के एक पत्रकार ने ऐसा कहा कि ७८६वीं कथा है। गिनती तो ठीक है। और इतनी की है यानी सच भी है। गिनती सही है। ये ७८६वीं कथा है। परंतु

मुझे दिल्ही के एक वरिष्ठ पत्रकार ने ऐसा कहा कि बापू, ये ७८६ का जो अंक है वो तो इस्लाम धर्म के अनुकूल होता है। और आप पाकिस्तान में कथा करने का मनोरथ किए हैं। करबला में कथा करने या किसी मुस्लिम कन्ट्री में जाकर कथा करने की बात है तो ७८६वीं कथा आप को करबला में करनी चाहिए अथवा तो किसी मुस्लिम राष्ट्र में करना चाहिए। विचार मुझे पसंद आया। और ऐसा विचार भी हुआ और इस कथा का करबला में निश्चित हो रहा था कि ये कथा करबला में ले जानी है। परंतु घड़ीघड़ी बदलते वहां के विचारधारा की टक्कर आदि-आदि के कारण सलाहें मिली वहां के मौलाना-मौलवियों की ओर से, धर्मगुरुओं की ओर से, वहां की सरकार की ओर से कि बापू को कहो कि इस समय यहां कथा का आयोजन करना सब के लिए अनुकूल नहीं है। मुझे क्या खबर कि इस कथा का योग्य स्थान पाळियाद ही होगा! क्योंकि ये भी एक मज़ार ही है न बाप! किसी पीर की भूमि में कथा होनी चाहिए ऐसी बात थी। चाहे जैसे भी अस्तित्व ने ऐसा रचा कि पाळियाद में विहळानाथ की भूमि पर कथा का आरंभ हुआ। मुझे इसका विशेष आनंद है कि ७८६ यहां हुई।

कभी-कभी ऐसा होता है कि मुझे कथा का कौन-सा मुख्य विषय लेना है यह मैं 'मानस' आधार पर निश्चित कर लेता हूं। कभी पहले से ही निश्चित होता है। कभी तलगाजरडा से निकलता हूं तब निश्चित हो जाता है और कभी रास्ते में निश्चित हो जाता है। कभी जहां कथा हो वहां पहुंचता हूं तब निश्चित हो जाता है। कभी जिस कुटिया में मेरा पड़ाव हो वहां पहुंचता हूं तब निश्चित हो जाता है। कभी मैं अग्नि प्रस्थापन करता हूं तब निश्चित होता है। कभी कथा में आता हूं, गाड़ी में बैठता हूं तब निश्चित होता है। कभी व्यासपीठ पर बैठता हूं तब निश्चित होता है। और कभी निश्चित ही नहीं होता! आज मेरी स्थिति ऐसी है कि मैं अभी तक इसका निर्णय नहीं कर सका हूं कि इस कथा का मुख्य विषय क्या रखना है? क्योंकि मेरे मन में जब से ये कथा दी है तब से अनेक विषय घूम रहे हैं कि जो इस स्थान पर भरे पड़े स्मरण, इस स्थान का समर्पण और अब इस स्थान को पवित्र हेतु से मिल रहा संवर्धन। इसके अनेक संदर्भों को मैं गुरुकृपा से विचार कर सकता हूं परंतु अंत:करण से कोई निर्णिय नहीं हो पा रहा है। इसलिए मैं कोई विषय घोषित नहीं कर सकता। कल सुबह साढ़े नौ बजे मेरे नाथ जाने! अथवा तो विहळानाथ जाने! और फिर जो कोई विषय सूझेगा तो ठीक, नहीं तो रामकथा तो है ही।

यहां इतना सुंदर वातावरण है कि मुझे लगता है, इस पर बोलूं, उस पर बोलूं। 'मानस' में से इसे लूं। एक क्षण तो मुझे ऐसा लगा कि ये विहळानाथ का स्थान है इसलिए 'मानस-विह्वळ' पर बोलूं। एक परम व्याकुलता, एक परम विह्वलता सेवा करने की, स्मरण करने की, समर्पण करने की, ठाकुर से मिलने की। जैसा कि अभी कहा गया, मुझको बहुत अच्छा लगा कि कोई भी आशीर्वाद लेने आता है तो कोई महंत ऐसा नहीं कहता कि यह विहळानाथ करेंगे। ऐसा कहता है ये विहळाठाकुर करेंगे। इसलिए लगा, 'मानस-ठाकर' करूं या क्या करूं? कुछ सूझता न था। इसलिए अभी किसी विषय का निर्णय नहीं हो रहा।

इस भूमि में 'रामायण' भरी पड़ी है इसका मुझे बहुत ही आनंद है। संवर्धन तो भईलुभाई कर रहे हैं अपनी दृष्टि से। पर दो वस्तु तो यहां मुख्य है, स्मरण और समर्पण। इन दो धाराओं का यहां मिलन है। दो धाराएं मेरी दृष्टि से, अपनी जवाबदारी से मैं पाळियाद के लिए कहूंगा कि एक धारा स्मरण की है यहां साहब! ये सभी जिस परंपरा के महापुरुष आये हैं ये मेरी दृष्टि से भजनानंदी है, स्मरणशील है। और इसके साथसाथ इतना भव्य स्मरण! मैंने हाल ही में राजकोट के एक कार्यक्रम में कहा कि समर्पण रहित हो और स्मरण रहित हो वो सर्जन विधुर है। उसका कोई मूल्य नहीं है। मतलब यहां दो धारा इकठ्ठी हुई है पाळियाद में। एक तो स्मरण है और दूसरा समर्पण है। और ये दो धाराएं मेरी दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसी दो धाराओं के मिलन स्थान में आज से रामकथा का आरंभ हो रहा है।

पहले दिन एक प्रवाही परंपरा रामकथा की व्यासपीठ निभाती है। और वो है रामकथा के माहात्म्य का गान करना कि ये कथा क्या है? 'रामचरितमानस' की एक जो प्रवाही परंपरा है। मैं तो ऐसा ही मानता हूं कि इस देश में चौबीस अवतार हुए हैं। मेरे लिए 'रामचरितमानस' पचीसवां अवतार है। ऐसी मेरी दृढ़ श्रद्धा है। ऐसा वक्तव्य मैंने किसी कथा में किया भी है। ऐसा ये 'रामचरितमानस' जो पाळियाद परंपरा में बापू की समाधि पर बापू बैठे हैं वहां 'रामचरितमानस' ऐसे खुला हुआ उनके समक्ष रखा गया है। और आप कल्पना कीजिए, जिनकी आंखें चौपाई बिना अन्य कहीं न गई हो वो आंखें कितनी रूपहली होगी! वो आंखें कितनी दिव्य होगी! एक बहुत ही लंबी परंपरा है रामकथा की और पाळियाद ने उसका सेवन किया है।

एक प्रवाही परंपरा रही है कि कथा का महिमागान करें। सात सोपान तो इस कथा के है ही। सात

मंत्रों में तुलसीदास ने एक सरोवर का रूप दिया है कि एक मानसरोवर है ये चलता-फिरता। और जैसे सरोवर के चार घाट हैं। एक घाट पर शिव पार्वती को कथा कहते हैं। एक घाट पर याज्ञवल्क्य भरद्वाज को कह रहे हैं। एक घाट पर कागभुशुंडि गरुड को कहते हैं। और एक घाट पर तुलसी अपने मन को अथवा संतगण को कहते हैं। पर रामकथा का मूल उद्गमस्थान कैलास है। और मूल रचयिता महेश है। और याज्ञवल्क्य महाराज परम विवेकी हैं। और परम विवेकी होने के कारण वो बहुत शीलवान है। और अपनी समढ़ियाळा की गंगासती ऐसा कहती है कि जो शीलवंत हो उसे आपको बारबार पग लागना चाहिए। और शीलवंत होना साधु का लक्षण है।

शीलवंत साधुने वारेवारे नमीए पानबाई।

और साहब! क्षत्रिय कुल तो बलवंत कुल है। क्षत्रिय कुल और पूरी सूर्य की परंपरा जहां अवतरित हो वो बलवंत कुल है, परंतु बलवंत कुल में जब शीलवंतपन मिलता है तब साधुता की खुश्बू फैलती है साहब! इस पूरी पाळियाद की परंपरा में ये साधुपन आया इसका मुझे आनंद है। तो शीलवंत जब विवेक का पर्याय बनता है तब वो वक्ता साधु है कागभुशुंडि, उसकी साधुता के विषय में क्या कहना? तुलसी भी साधु हैं। और भगवान शंकर, उनकी साधुता के विषय में क्या कहूं? उस चारों घाट पर किसी न किसी रूप में साधुता गान कर रही है। और साधुपना किसीका इज़ारा नहीं है बाप! साधु एक अलग तत्त्व है। तो शिव साधु इस कथा का गान कर रहे हैं और फिर मुझे तलगाजरडा को ऐसा लगता है कि शिव साधु के लक्षण कैसे होंगे? तब मुझे मेरे गुरु की कृपा से पांच लक्षण मिले वे इस पाळियाद की भूमि तक चरितार्थ होते दिखे। कौन है ये शिव साधु? एक तो ऊंचाई इतनी, उज्ज्वलता इतनी, सफ़ेदी, श्वेतपन, कैलास में शीतलता इतनी। मुझे अपने समाज से यही कहना है कि जहां-जहां रामकथा है उसे अंत:करणपूर्वक जिन्होंने गाई है, सेवन किया है वो सभी साधु है। फिर उसका वेश चाहे जो हो, वर्ण कोई भी हो, भाषा कोई भी हो, कोई फ़र्क नहीं पड़ता। तो कैलासी परंपरा जो है, प्रवाही परंपरा जो है उसके मूल में इस कथा का सर्जक है, गायक है, श्रोता भी है। और कहीं-कहीं किसी से कथा कराने का संक्षिप्त आयोज भी करवाते हैं शंकर। शंकर क्या नहीं है? एक वस्तु आप समझ लें, चाहे जिसको माने, चाहे जिसको भजें पर भक्ति शंकर की कृपा के बिना सफल नहीं होगी। तो इस शिव को जब ब्रह्मा साधु कहते हैं तो शंकर जो गायक है, ज्ञानपीठ का जो गायक है, उसे किस लिए साधु कहा? वो पाळियाद तक ये बात चली आती है। इसीलिए मुझे कहना है पहले दिन।

एक, शिव इसलिए साधु है, साधु का लक्षण है सावधान करे वो साधु। शिव साधु है। सती को उन्होंने कितनी बार सावधान किया साहब! एक तो सती को कुंभज ऋषि के आश्रम से कथा सुनकर लौटते समय राम की ललित नरलीला पर संदेह हुआ और तब शिव ने तुरंत सावधान किया कि हे देवी, सावधान! संशय मत करो। नहीं मानी। फिर दूसरी बार सावधान किया कि परीक्षा लेने जा रही हो तो सावधान रहना। थोड़ा विवेक का विचार कर के परीक्षा करना। तीसरी बार सावधान किया जब सती जिद्द करती है कि मुझे अपने पिता के घर यज्ञ है और आप न जाएं तो कोई बात नहीं पर मुझे जाने की आज्ञा दीजिए, तब शिव ने सावधान किया कि देवी, न जाओ तो अच्छा है। किसी भी परिस्थिति में मुझे और आप को सावधान करे उसका नाम साधु।

पहला लक्षण, सावधान करे वो साधु। और दूसरा, जो समाधान दे वो साधु है। शिव ने पार्वती के अनेक वहमों का समाधान किया और पार्वती को दूसरे अवतार में शिव से कहना पड़ा-

मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस।।

समाधान हो गया साहब! तो समाधान दे उसका नाम साधु। शिव साधु है। तीसरा, बहुत से लोग मेरे पास स्वाभाविक ढ़ंग से आते हैं वे ऐसा कहते हैं कि वाल्मीकि में ऐसा लिखा है और तुलसीदासजी ने ऐसा लिखा है! बहुत फेरफार आपको दिखेगा। उस पर से मेरी व्यासपीठ कहने जा रही है कि शिव साधु का तीसरा लक्षण, देशकाल और व्यक्ति को देखकर वारंवार संशोधन करता है उसका नाम साधु है। ऐसा लगे कि यह देशकाल अब अलग है, जो व्यक्ति समने आया है वो अलग है। और उसकी रुचि अथवा परम हित को देखकर संशोधन करे वो साधु है। शंकर इसलिए परम साधु है। चौथा लक्षण; दूसरे के परम कल्याण के लिए सभी बातें हम कहे कि रहने दो, ऐसा न करो। सावधान करे, समाधान देने की कोशिश करें, नये-नये संशोधन प्रस्तुत करे फिर भी अगला व्यक्ति न माने तब निराश या उदास हुए बिना हरिनाम का भजन करने लगे उसका नाम साधु। भगवान शंकर सभी कोशिश किए फिर भी जब सती नहीं मानी तब उन्होंने निश्चित किया कि अब एक ही उपाय है भजन। निरंतर साधना करता है शिव साधु।

पांचवां और अंतिम लक्षण जो आदि वक्ता है हमारा उसका; चाहे कैसी भी परिस्थिति आए परंतु समाधान नहीं छोड़ता उसका नाम साधु। शिव को आप पुराणों में देखें साहब! कितने-कितने लोगों ने गालियां दी हैं! कितने लोगों ने ठगा है! कितने-कितने लोगों ने उसके साथ चाल चली है! कितने-कितने लोगों ने उसके समक्ष ऐसा कहा और बाद में वैसा कहा! ऐसे उदाहरण अपने यहां व्यासमुनि ने अंकित किया है। और फिर भी जो मनुष्य ने अपनी साधुता नहीं छोड़ी वो शिव साधु का पांचवां लक्षण है। ऐसे पंच लक्षणयुक्त साधु के मुख से पहली बार रामकथा निकली है।

तो 'मानस' की महिमा गाते हुए तुलसीदासजी ने लिखा कि ये 'मानस' एक सरोवर है। इसके चार घाट हैं। इसका मुख्य घाट है ज्ञानघाट, कैलासघाट जहां महादेव बैठकर रामकथा कहते हैं। वो साधु है। याज्ञवल्क्य विवेकी हैं। विवेकशील का पर्याय होने से शीलवंत वो साधु ही कहलायेगा। इसलिए याज्ञवल्क्य साधु है। भुशुंडि तो साधु है ही। और गोस्वामीजी कहते हैं, मेरा भरपूर प्रयत्न है साधु का कि मैं साधु बनूं। 'विनयपत्रिका' में 'कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो।' गांव के भाई-बहनों, 'विनयपत्रिका' तुलसीदासजी का एक दूसरा ग्रंथ है। जैसे 'रामायण' उनका ग्रंथ है तुलसीकृत 'रामायण' वैसे तुलसी के अन्य बारह ग्रंथ हैं जिसे मैं 'तुलसी-उपनिषद' कहता हूं। ये बारह ग्रंथ मेरे लिए उपनिषद है। उसमें से एक बहुत ही विशिष्ट ग्रंथ 'विनयपत्रिका।' उसमें तुलसी ऐसा कहते हैं कि मुझे भी इच्छा होती है कि मैं भी साधु की तरह जीने की कोशिश करूं।

ये पांच लक्षण मैंने समझकर यहां प्रस्तुत किया है। पाळियाद की परंपरा का बखान करने के लिए नहीं कह रहा। कोई अन्य कारण भी नहीं है। मैंने अपनी जीभ 'मानस' को सोंप दी है। किन्हीं मनुष्यों के बखान के लिए नहीं है। परंतु यहां जो पीराई आयी है साहब! उसमें पांचों लक्षण हैं। इस स्थान ने, इस स्थान की पीराई ने, ये विहळानाथ की समस्त पावन परंपरा ने समाज को समाधान दिया है। लोग श्रद्धा से उसे चमत्कार समझते हैं तो ये भी अच्छी वस्तु है। पर थे वो समाधान कि ले ये तेरा समाधान है। कितना-कितना प्रताप! श्रद्धा का जगत हो वहां बुद्धि नहीं लड़ाते। उसमें चुपचाप बैठे रहना चाहिए। कैसे ऐसा होगा और कैसे ऐसा होगा? इतना बड़ा मंडप और नौ दिन तक हजारों मनुष्य भोजन करेंगे। उसके अलावा आपको दूसरा चमत्कार कौन-सा चाहिए? ये विहळानाथ का चमत्कार है। २४८-२४८ गांव का धुआं बंद करना! पृथ्वी के गोले पर कोई मुझे करके दिखाए ऐसा चमत्कार! इस स्थान ने जगत को समाधान दिया है। इस स्थान ने जगत को सावधान किया है कि भाई, ऐसा नहीं करना चाहिए। इस स्थान ने कितने बड़े समाधान दिए हैं! मुझको और आपको बहुत ही बड़ी-बड़ी समस्याओं में ऐसे सावधान किए हैं, समाधान दिए। इतना ही नहीं, सेवाकीय क्षेत्रों में संशोधन किए हैं। खुद आशीर्वाद न देना यह मेरे लिए बड़े से बड़ा संशोधन है कि हमें आशीर्वाद नहीं देना चाहिए, निमित्त बनकर कहना चाहिए कि ठाकर करे वो ठीक। तुम उसके शरण में आओ। ये मेरी दृष्टि से संशोधन है। और किसी भी परिस्थिति में साधुपन नहीं छोड़ना चाहिए ये इस स्थान की महिमा है। और निरंतर स्मरण साधना।

तो ये पांच लक्षण शिव साधना के हैं। वहां से इस कथा का आरंभ हुआ है। तुलसीदासजी इस कथा का महिमा गान करते हैं तब पूरा इतिहास व्यकत करते हैं तब, ऐसा आलेखन 'मानस' में करते हैं। ऐसी ये दिव्य 'रामकथा' है। सात सोपान का प्रतिनिधित्व करते हो इस प्रकार सात मंत्र 'बालकांड' में गोस्वामीजी ने दिया है। इसकी कोई शास्त्रीय चर्चा नहीं करनी है। शास्त्रीय चर्चा करनेवाला वर्ग अलग होता है। मुझे आपके साथ नौ दिन निरंतर रामकथा को केन्द्र में रखकर राम की बातें करनी हैं।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

तो सात मंत्र लिखे। और फिर तुलसी को तो अंतिम मनुष्य तक पहुंचना था, लोक तक पहुंचना था। और इसलिए वाल्मीकि के श्लोक को लोक तक ले जाने के लिए बिलकुल देहाती भाषा में तुलसीदासजी ने उसे भाषाबद्ध करने का निर्णय किया और पांच सोरठे आरंभ में लिखे वो बिलकुल लोकबोली में लिखे। और बारंबार व्यासपीठ से भी कहा गया है कि जो-जो भी महापुरुष हुए हैं वो जब भी अपनी बात रखते हैं तब वे लोकबोली में ही बोले हैं। हम पढ़ने से पहले अनपढ़ ही होते हैं ये नहीं भूलना चाहिए। कोई भी आदमी कितना भी पढ़ा हो पर मूल में तो हम अनपढ़ ही होते हैं। वैसे मूल में तो लोक ही है। श्लोक तक तो बाद में पहुंचते हैं। मूल में लोक है और ये मूल न भूल जायें इसलिए लोकबोली में तुलसी उतरते हैं। तो लोकबोली में पूरा ग्रंथ उतारा। पांच सोरठे लिखें। और हम गांव के आदमी को समझ में आये इस तरह लिखे कि

पहले गणपति की पूजा करनी चाहिए। जैसे शंकराचार्य भगवान अपने ढ़ंग से कहते हैं, तुलसी अपने ढ़ंग से कहते हैं और मैं अपने ढ़ंग से आप से बात कर रहा हूं कि पांच देव की पूजा हम सभी गांववाले या पढ़े जो हो जिसे समझ में आये। पांच देव की पूजा करनी चाहिए। उसमें पहले गणपति। हम सभी गणपति को पूजते हैं। गणपति की पूजा करनी चाहिए ऐसा 'रामायण'कार कहते हैं। फिर सूर्य की पूजा करनी चाहिए। सूर्य को जल चढ़ाना चाहिए, पानी चढ़ाना चाहिए। फिर हम नवरात्रि मनाएं और माताजी का गरबा लें। गौरी पूजा करें ये तीसरा। चौथा श्रावण मास आये तब भगवान शंकर के मंदिर में हम दर्शन करने जायें, 'रुद्राष्टक' का पाठ करें, अभिषेक करें। पांचवां, भगवान नारायण, विष्णु प्रभु की पूजा। फिर वो पौराणिक दृष्टि से विष्णु के जो-जो रूप हैं। राम विष्णु के रूप हैं, कृष्ण हैं। ये पौराणिक दृष्टि है। राम में से कितने विष्णु निकलते हैं! राम में से कितने ब्रह्मा निकलते हैं! मूल तत्त्व में राम है। इसलिए पांच देव की पूजा करने के लिए तुलसीदासजी ने मुझे और आप को कहा है। और हम लगभग करते हैं। गणपति की पूजा हम करते हैं। गणपति को हम भजते हैं। दूसरा, गांव में रहनेवाला तो सूर्य को पूजता है। उपासना क्या, सूर्य की उपस्थिति में ही पूरा जीवन खेत में बिताता है। वो सूर्य उपासना है। श्रावण के महिने में हम शंकर के मंदिर में जल चढ़ाने जाते हैं ये अपनी श्रावणी साधना है। नवरात्रि में माँ अंबा का गरबा लेते हैं, अनुष्ठान करते हैं। और भगवान नारायण, भगवान विष्णु फिर उनके जो रूप पौराणिक रूप में या अन्य रूप से हो, उनके मंदिरों में हम जाते हैं।

पांच देवों की वंदना। पांच देवों का स्मरण। गणेश, भवानी, शिव, विष्णु भगवान और सूर्य। जगद्गुरु आदि शंकराचार्य सनातन धर्म के प्रवाह में है उसे पांच देवों की पूजा करने को कहा। वो तुलसी ने अपने सद्ग्रंथ के आरंभ में उसकी स्थापना की। शांकरी विचारों को परम वैष्णव तुलसी ने अपने ग्रंथ में अग्र स्थान दिया। इस तरह उन्होंने सेतु बनाया। पांच सोरठे में तुलसीदासजी गुरुवंदना करते हैं-

बंदउँ गुरुपद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

गुरुचरणकमल की तुलसीदासजी ने वंदना की। और 'रामचरितमानस' जहां चौपाई से शुरू होता है वहां पहले गुरुवंदना है अथवा तो गुरु महिमा है। आरंभ गुरुवंदना से हुआ है। और मेरी दृढ़ श्रद्धा है कि गणेश की पूजा हो, बहुत उत्तम। गौरी की पूजा हो, बहुत उत्तम। सूर्य का अनुष्ठान हो, क्या कहना? विष्णु भगवान का पूजन हो, शिव का निरंतर अभिषेक हो, बहुत अच्छी बात है। परंतु शायद हम गांव के आदमी, व्यस्त आदमी, संसारी है हम, मैं और आप सब मायावी जीव हैं ये सब हम न कर सके तो शायद तुलसी कहना चाहते हैं कि आपके जो गुरु हो, जहां आपकी संपूर्ण श्रद्धा है, विकल्परहित विश्वास है ऐसे किसी गुरु का आश्रित बनकर जीए तो इन पांचों देव की पूजा हो जाती है।

मैं जानता हूं। मैंने अनेक बार उसे समझकर चर्चा की है। बौद्धिक जगत अथवा तो वितंडावादी लोक अथवा तो तथाकथित पंडित ऐसा मानते हैं कि गुरु की जरूरत नहीं है। हम सीधे परम को पा सकते हैं। गुरु के लिए अपशब्दों का प्रयोग भी किया है लोगों ने! और सभी अपनी कुलीनता के अनुसार बोलते हैं। आज कलियुग में मुझे दो जगह ही मैल दिखती है। एक जीभ के उपर बहुत मैल है और दूसरे अपने कान में बहुत मैल है। और हम सभी ये मंथरा और कैकेयी के अवतार होते जा रहे हैं। मंथरा की जीभ पर मैल थी और कैकेयी के कान में मैल थी। इसीलिए अयोध्या में होने पर भी उसकी जीभ की मैल ने क्या किया? और अयोध्या में होने पर भी कैकेयी के कान में मैल थी। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। ये दो वस्तुएं बचाने की जरूरत है बाप! और ये मैल कौन दूर करेगा? अपना गुरु। मंथरा जैसे समाज ने ऐसे काम किए हैं। कान बिगड़े। जीभ बगड़ी। आंखें बिगड़ी। मोतिया का ओपरेशन होगा साहब! झामर का ओपरेशन होगा। सब होगा। परंतु यह जो आंख बिगड़ गई अपनी उसका क्या किया जाए? जिसने गुरु की सेवा की उसकी बात कुछ अलग है। परंतु अमुक लोग गुरुपद को गाली देते हैं! उनकी कुलीनता! उनके संस्कार हैं! वे अपना एड्रेस देते हैं हमे कि हमारा ये एड्रेस है। हम ऐसा ही बोल सकते हैं। पर सनातन परंपरा और विश्वास का जगत ने कभी गुरुपद का द्रोह नहीं किया साहब! गुरु, गुरु है। इसीलिए अपने प्राचीन भजनों में भी संतों ने गाया है-

गुरु तारो पार न पायो, ए न पायो,
प्रथमीना मालिक, तमे रे तारो तो अमे तरीए।

और मुझे यदि एक ही वाक्य में गुरु की व्याख्या करनी हो तो तलगाजरडा ऐसा कहेगा, धर्मभ्रष्ट किए बिना दुलार करे उसका नाम गुरु। आपके परंपरा की कोई कंठी न तोड़वाए और फिर भी आप पर ममता करता रहे, आपको किसी धर्म

और संप्रदाय के अलग क्षेत्र में ले जाने का प्रलोभन न दे, भय न दिखाए। दुनिया में बहुत से धर्माचार्य और गुरुजन हुए हैं, ये सभी ने ऐसे काम किए हैं! धर्मभ्रष्ट करने के काम किए! मैं किसी का नाम नहीं देता, उन तथाकथित बड़े धर्मों का; उसने सब को धर्मभ्रष्ट करने का काम किया! कंठियां बदल दी! तिलक बदल डालें! ये कर डाला, वो कर डाला! कौन गुरु? जो मुझे और आपको धर्मभ्रष्ट किए बिना दुलार करता है! ऐसा गुरु है त्रिभुवन गुरु महादेव। शंकर किसी दिन नहीं कहेगा कि तू शैव हो जाए। शंकर किसी दिन नहीं कहेगा कि तू आड़पुंड कर। वो ऐसा नहीं कहेगा कि तू रुद्राक्ष की माला ले। कुछ नहीं कहेगा। वह मुझे और आप को दुलार करेगा, हमें प्रेम करेगा। ऐसा गुरु, उसका पार नहीं पाया जा सकता है बाप! और जब अवसर मिलता जा रहा है तब आंसू आते हैं कि 'अमे अपराधी कांई ना समज्यां, न ओळख्या भगवंतने।' कोई गुरुपद ले लेना बाप! किसी गुरुपद का सेवन करना चाहिए। परंतु उसे परखना। हमारा रमेश पारेख वह तो शिष्ट साहित्य का आदमी था। फिर भी ग्रामीण भी था। वो लिखता है-

पांचीकाना होय, होय नहीं कदी संतना ढ़गला।
संत सहुने मुक्ति वहेंचे, नहीं वाघां, नहीं ड़गलां।

गोटी हो तो उसका ढ़ेर होगा, चींया का ढ़ेर होगा, चरौंठी का ढ़ेर होगा; गुरु का ढ़ेर नहीं होगा। वो तो कोई एक होगा। समस्त जगत को तारता है साहब! एक महादेव बात पूरी कर देता है। एक शंकराचार्य, एक रामानुज, एक निम्बार्क, एक वल्लभाचार्य, एक विहळानाथ हमें हमारे मन की ऋतु अनुसार ओढ़ा-ओढ़ाकर सुलाता है। हम तो हेतु अनुसार काम करते हैं। हेतु रहित कौन प्रेम करता है? धर्मभ्रष्ट किए बिना दुलार करे वो मेरी दृष्टि से एक अर्थ में गुरु है। और ऐसे गुरु का पार नहीं पा सकते हैं। मैं या आप उसका कोई अंदाज़ नहीं लगा सकते।

तो 'रामचरितमानस' में गुरुवंदना से रामकथा का आरंभ होता है। गुरु सब कुछ है आश्रित के लिए। पैर सब के पड़ना पर शरणागति एक की होती है और एक बार ही होती है। और सब बेड़ा पार! ऐसा है गुरुपद। वह किसी दिन कमज़ोर नहीं होता। आज भी अपनी सभी देहाती संस्थाओं में अभी भी रोटी खिलाना वैसे का वैसा चल रहा है साहब! कोई पूछता नहीं, तुम किस धर्म के हो? तब ऐसे जगत में आज भी बहुत-सी जगह पर उस प्रवाह में हो उन्हें ही रोटी खिलाते हैं! दूसरे को नहीं खिलाते! इस पाळियाद में किसी से पूछते हैं कि तुम किसके चेले हो? रोटी खा लो। तुझे जिसको भजना है भजना। तेरी कौन-सी दीक्षा और कौन तेरा गुरु और कैसा तेरा तिलक? कोई नहीं पूछता। धन्य है पूरी भूमि अपनी। अपनी सभी जगहें, अपने स्थान। इसीलिए मैं अभी दो-तीन कथाओं से कह रहा हूं, अपने यहां चलते अन्नक्षेत्र वे अन्नक्षेत्र नहीं, ब्रह्मक्षेत्र हैं। शास्त्र में ऐसा कहते हैं कि निर्वस्त्रों को कपड़ा ओढ़ावो, पहनावो तब उस समय पात्र-कुपात्र मत देखो। क्योंकि उसके शरीर पर कपड़ा नहीं है। उसकी लज्जा का भी प्रश्न है और मौसम सहने का भी प्रश्न है। वह पात्र है या कुपात्र यह नहीं देखना चाहिए। मनुष्य की भूख ही देखना चाहिए। बीमार को दवा देनी ही चाहिए। वो पात्र है या कुपात्र यह नहीं देखना चाहिए। हमारे यहां गुरुपदों ने ऐसे अद्‌भुत कार्य किए हैं। इसीसे गुरु की महिमा कुछ अलग ही है।

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।

पहला पूरा दोहा ऐसी चौपाईयों से भरा हैं। जिसमें गुरुपद, गुरुचरण कमल, गुरुचरण नख, गुरुचरण रज, इन सब की महिमा गाया है। गुरुचरणकमल हमें असंगता देता है। गुरुचरणनख की ज्योति हमें दिव्य दृष्टि देती है। और गुरुचरणरज हमारे भवरोग की औषधि बनता है। इसलिए तीनों आश्रित साधक के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। परंतु उससे पहले सभी को प्रणाम शुरू किए और सब से पहला प्रणाम गोस्वामीजी ने किया ब्राह्मण देवताओं को, जो भूदेव हैं, जो महिसुर हैं, पृथ्वी के ही देव गिने जाते हैं ऐसे ब्राह्मण। तुलसीदासजी ने समाज के सज्जनों की वंदना की कि जिसका जीवन कपास के फूल जैसा होता है। ऐसे साधुचरित की वंदना की। खल, शठ, राक्षस, अच्छे-बुरे ये द्वन्द्वात्मक जगत है। ब्रह्मा की सृष्टि ही गुण-अवगुण से मिश्रित है। पर सब को राममय जाना। 'सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म', इस उपनिषदी सूत्रात्मक व्याख्या को उन्होंने चौपाई में रख दिया-

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

संक्षेप में कहने का अर्थ इतना ही है कि अपनी आंख यदि सुधर जाए तो दुनिया में किसी की निंदा करने जैसा है ही नहीं। पर हमें दूसरे की निंदा करने की इच्छा हो मतलब समझना चाहिए कि हमारी आंख में कोई तकलीफ़ है! बस, इतना समझ लेना चाहिए, फिर हम चाहे किसी भी क्षेत्र में कितने बड़े हो। नहीं तो निंदा सूझेगी ही क्यों? पूरा जगत ब्रह्ममय लगेगा। गुरु की कृपा होगी तो ऐसा होगा, बाकी मुश्किल है। मेरे तुलसी कहते हैं, जगत मुझे ब्रह्ममय लगा है, ब्रह्मरूप लगा है। ये सब ब्रह्मस्वरूप है।

विहळानाथ के यहां अपने बोटाद परगना का एक आदमी मजूरी करनेवाला पूरे दिन मजूरी करता। रात को न पीने जैसा पीता। वह पग लागने आया और कोई ईर्ष्या करनेवाले अथवा द्वेषी लोगों ने कहा कि विहळानाथ, ये आदमी बहुत पापी है, ये न पीने जैसा पीता है, गालीगलौंज करता है। तब विहळानाथ ने कहा, यह तुम्हारा अभिप्राय है, मेरा नहीं। मेरा अभिप्राय तो ये मेरे द्वार पर आकर बैठा है और विहळानाथ यदि पवित्र हो तो उसके द्वार पर अपवित्र कदम से कैसे आया जायेगा? इसके पवित्रता की प्रक्रिया शुरू हो गई है। उसमें तो क्रिया शुरू हो गई है इसलिए मुझ तक पहुंचा है। यह दृष्टि कब आयेगी? उसे ब्रह्म भासित हुआ। तो तुलसी कहते हैं, गुरु के चरणरज से मुझे समस्त जगत सीताराममय लगता है। अब मैं माँ कौशल्या को प्रणाम करता हूं; महाराज दशरथजी को प्रणाम करता हूं; जनक को और उन्हें परिजन सह प्रणाम करता हूं; संत भरत को प्रणाम करता हूं; लक्ष्मण को प्रणाम करता हूं; शत्रुघ्न महाराज को प्रणाम करता हूं और फिर-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

भगवान महावीर हनुमानजी की वंदना तुलसीदासजी ने इस पूरे क्रम में वंदना प्रकरण में की है। फिर तो राम सखाओं की वंदना करते हैं। सीतारामजी की वंदना करते हैं और अंत में वंदना प्रकरण में रामनाम महाराज की वंदना करते हैं। पहले दिन की कथा में हम सब हनुमानजी की वंदना कर लें 'विनयपत्रिका' के पद की दो-तीन पंक्तियों द्वारा। सब को याद है। बारबार मैं गाता हूं। सब को पता है इसलिए सभी गाना ऐसी मेरी प्रार्थना है। अनिवार्य नहीं है पर गायेंगे तो आनंद आयेगा।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल-अमंगल-मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

गोस्वामीजी ने श्री हनुमानजी की वंदना की। कोई भी संप्रदाय हमारा हो, मुबारक। कोई भी धर्म हमारा हो, कोई भी साधना पद्धति हमारी हो, ठीक है। परंतु हनुमानजी का आश्रय यदि किया जाये तो जिस-तिस साधनापद्धति में हमें बहुत बल मिलता है। विवेक बुद्धि खूब प्राप्त होती है। और अंत में मुक्त करनेवाली विद्या प्राप्त होती है। इसीलिए सार्वभौम हनुमंततत्त्व है। हनुमंततत्त्व बिलकुल बिनसांप्रदायिक परमतत्त्व है। हनुमानजी का आश्रय करना चाहिए। उन्हें शनिवार-मंगलवार को लोग बहुत श्रद्धा से तेल चढ़ाते हैं। अच्छा है। पर संस्कृत में जो चिकना प्रवाही पदार्थ होता है उसे स्नेह कहा जाता है। तेल और घी उसे संस्कृत में स्नेह कहा जाता है। स्नेह यानी घी। स्नेह यानी तेल। स्नेह यानी मधु। जितने भी चिकने प्रवाही पदार्थ हैं उसे स्नेह कहा जाता है। हनुमानजी को तेल चढ़ावो। मतलब तेल चढ़ाना आपकी श्रद्धा है तो चढ़ाओ पर बहुत नहीं, दो-तीन बुंद चढ़ाना उनके पग में। हनुमान को बहुत गंदा मत करो। हनुमान शुद्ध संकल्प की प्रतिमा है साहब! अखंड पावित्र्य के प्रतीक हैं श्री हनुमानजी। इसलिए आप सिंदूर लगाते हैं मतलब समर्पण करते हैं। हनुमाजी को हम धागा चढ़ाते हैं। धागा यानी सूत्र। हनुमानजी को ब्रह्मसूत्र चढ़ावो, भक्तिसूत्र चढ़ावो, साख्यसूत्र चढ़ावो, योगसूत्र चढ़ावो, न्यायसूत्र चढ़ावो। ये शास्त्रीय सूत्र हैं इन्हें हनुमानजी को चढ़ावो। तो हनुमानजी को स्नेह चढ़ावो। जिसको जैसी श्रद्धा। हनुमंत का आश्रय करना चाहिए। पुरुष हो या स्त्री, कोई भी हो। हनुमानतत्त्व हमें हमारी साधना में बहुत बल प्रदान करता हैं। वो अपना प्राणतत्त्व है। उसके बिना हम जी नहीं सकते। वह प्राणवायु है। वह पवनतनय है। और वायु बिना, प्राणवायु के बिना हमारा जीवन नहीं है। अर्थात् हनुमंत प्राणतत्त्व है, विश्वासतत्त्व है। शंकर के अवतार है हनुमानजी महाराज। इसलिए उनके संग कोई जातिभेद नहीं, कोई वर्णभेद नहीं, भाषाभेद नहीं, देशकाल का भेद नहीं है। सभी हनुमानजी का सेवन कर सकते हैं। तो हनुमंतवंदना के साथ आज पहले दिन की रामकथा यहां विराम ले रही है।

आज कलियुग में मुझे दो जगह ही मैल दिखती है। एक जीभ के उपर बहुत मैल है और दूसरे अपने कान में बहुत मैल है। और हम सभी ये मंथरा और कैकेयी के अवतार होते जा रहे हैं! मंथरा की जीभ पर मैल थी और कैकेयी के कान में मैल थी। इसीलिए अयोध्या में होने पर भी उसकी जीभ की मैल ने क्या किया? और अयोध्या में होने पर भी कैकेयी के कान में मैल थी। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। और ये मैल कौन दूर करेगा? अपना गुरु। मंथरा जैसे समाज ने ऐसे काम किए हैं। कान बिगड़े। जीभ बगड़ी। आंखें बिगड़ी। मोतिया का ओपरेशन होगा साहब! झामर का ओपरेशन होगा। सब होगा। परंतु यह जो आंख बिगड़ गई अपनी उसका क्या किया जाए?

मानस-पीराई : २

पर पीड़ा को तत्क्षण जाने वो पीर

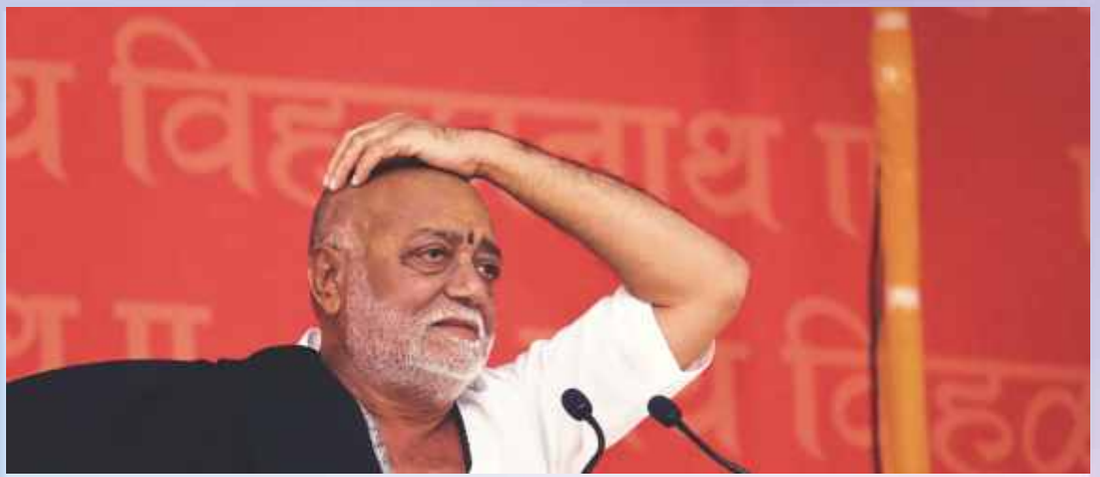

करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहिं पीर पराई।।
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।

बाप! गतकल तक मेरे मन में कोई निर्णय नहीं हो रहा था। मैंने आप से कहा भी था कि मैं नौ दिन की इस कथा में 'मानस' के आधार पर कौन-सा विषय लूं वह कुछ निश्चित नहीं था। पर आज लगभग पोने नौ बजे निश्चित हुआ सुबह में। और हनुमंत प्रेरणा गुरुकृपा से मेरी व्यासपीठ ने निश्चित किया है कि 'मानस' के आधार पर इस कथा में मैं 'मानस-पीराई' पर बोलूं। ये पीर की भूमि है। रामापीर सीधे वहां से यहां प्रगट हुए विहळानाथ के स्वरूप में। यह जो पूरी पीरपरंपरा और पीर की पीराई है, क्या कहना! पीर का वस्त्र आप देखो तो हरा होता है। परंतु वृत्ति उजली होती है। उसका नाम पीराई है। उनका कपड़ा हरा होता है अधिकतर। परंतु उनकी वृत्ति यानी उनकी पीराई बहुत निर्मल होती है, उज्ज्वल होगी, विहळ होगी। विहळानाथ का अर्थ किया है- वि, कहते ही वारे। हमें वार ले, तार ले, अच्छा कहे। हुंकार दे। ह, कहने पर हमारे कष्टों को हर ले। और ळ, कहने पर जो मेरे और आपके अंत:करण की कोठरी में दीप प्रगटित करे उसका नाम विहळ। ये विहळी धारा है। देवभूमि पांचाल का यह एक भू भाग है। यहां जब नौ दिन की रामकथा प्रारंभ हो रही है तब तलगाजरडा आपके साथ बात करना चाहता है। कोई उपदेश नहीं है बाप! कोई नया संदेश नहीं है। कुछ नहीं है। मेरे भाई-बहन, साथ में बैठकर बातें करने का कोई माध्यम तो चाहिए न! मेरे लिए माध्यम है मेरी रामकथा आपके साथ बात करने के लिए। इसलिए 'मानस-पीराई।' पीराई किसे कहेंगे? २४८ वर्ष हुए पूज्य विसामण बापू को। और अभी तक लोगों की ये श्रद्धा है। मैं देखता रहता हूं। और जलन मातरी का शे'र याद आता है कि-

श्रद्धानो हो विषय तो पुरावानी शी जरूर?
कुर्रानमां तो क्यांय पयंबरनी सही नथी।

केवल श्रद्धावश इस स्थान पर आनेवाला लोकसमुदाय। कितनी पीराई भरी पड़ी होगी यहां? और फिर एक बार अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं कि यहां की पीराई में चौपाईयों ने भी बहुत काम किया है। इस पीराई में चौपाई भरी पड़ी है। 'रामायण' पड़ा है इस पीराई में। इसका विशेष आनंद एक साधु के रूप में अनुभव करता हूं। तो बाप! 'मानस-पीराई', इस कथा का नव दिवसीय विषय है। एक पंक्ति जो मैंने ली है वो 'अयोध्याकांड' में से लिया है और दूसरी पंक्ति जो लिया है वो 'उत्तरकांड' से ली है।

करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहिं पीर पराई।।
नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।

कौन पीर? किसकी पीराई सच है? तुरंत तत्क्षण पर की पीड़ जान ले वो पीर। ऐसा था मेरा रघुनाथ। और ऐसा था अपना विहळानाथ। ये पूरी परंपरा जो दूसरे की पीड़ जाने। और दूसरे की पीड़ कौन जानेगा? जिसका स्वभाव करुणामय होगा वो पर पीड़ा को जानेगा। परंतु करुणामय कौन होगा? जिसने अपनी वृत्तियों का स्वामित्व प्राप्त किया हो; जो गोसाईं हो; जिसने सभी इन्द्रियों की लगाम अपने हाथ में पकड़ी हो कि मेरी इन्द्रियां कहीं राग-द्वेष में न जाएं। स्व और पर का भेद खड़ा न करे, उसका स्वभाव करुणामय होगा। और जो करुणामय होगा वो पर पीड़ा का तत्क्षण जान जाएगा। पर पीड़ा को तत्क्षण जाने वो पीर। और उस पीर का समस्त जीवन उसका नाम पीराई है। तुलसी 'उत्तरकांड' में ऐसा लिखते हैं-

नर सरीर धरि जे पर पीरा।
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा।।

मनुष्य शरीर धारण करने के बाद जो दूसरे को पीड़ा देगा, पीड़ा पैदा करेगा वो इस संसार की बहुत बड़ी पीड़ा को सहन करेगा। उसे बहुत कष्ट होगा। इन दो पंक्तियों के आधार पर मुझे आपके साथ अपनी भाषा में बातें करनी है 'मानस-पीराई' की। अपने नरसिंह मेहता उनका विश्वप्रसिद्ध पद और जो विश्ववंदनीय पूज्य गांधीबापू द्वारा समूचे विश्व में फैल गया, उसमें भी अपना नागर यही बात करता है-

वैष्णवजन तो तेने कहीए जे पीड़ पराई जाणे रे।

'मानस' की एक चौपाई तो खूब लोकप्रिय है-

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

अठारह पुराण में महर्षि व्यास ने संपादन करते-करते दो वचन पूरे जगत के लिए कहा। समूचे जगत को हो। केवल भारत को नहीं। कोई संकीर्ण मानसिकता के कारण, कोई कट्टरता के कारण इसे न स्वीकार करे तो मेरे नाथ जाने! अठारह पूराण का सार व्यास कहते हैं दो वाक्य में कि दूसरे का हित करना इससे बड़ा कोई धर्म नहीं है और दूसरे को पीड़ा देना इससे बड़ी कोई अधमता नहीं, उससे बड़ा कोई पाप नहीं है। लंबी-चौड़ी बात करने का प्रश्न ही नहीं रहता साहब! तो अपना नरसैंया, ये लगभग साढ़े पांच सौ-छः सौ बर्ष होने को आया इस मेहता को। और उसने इतने वर्षों पहले कहा कि मैं वैष्णव उसे कहूंगा जो दूसरे की पीड़ा जाने-समझें। ऐसा था मेरा रघुनाथ।

हम दूसरे की पीड़ा न जाने तो कोई हरज नहीं पर मनुष्य शरीर धारण करने के बाद दूसरे को यदि पीड़ा दें तो हमें बहुत मुश्किली का सामना करना पड़ेगा बाप! और तुलसीदासजी ने 'रामायण' में तीन प्रकार के जीवों की बात की है। एक बड़ा समुदाय जीवों का जिसमें मैं और आप सभी लगभग आ जाते हैं। अमुक साधु-संतों, अमुक विशिष्ट महापुरुषों को छोड़कर हम जैसे सभी लोग विषयी जीव गिने जाते हैं। उसमें से कुछ परिपक्व हुए उन्हें तुलसी साधक कहते हैं। और उसमें कुछ परिपक्व होकर निकले कोई-कोई उसे मेरे गोस्वामीजी सिद्ध कहते हैं। और उसमें से कोई निकल जाये उसे तलगाजरडा शुद्ध कहता है। वो चौथा जीव। ये 'रामायण' में नहीं लिखा है। मुझे भी तो कुछ कहना होता है यार! सत्तर वर्ष में मुझे कोई अनुभव नहीं होगा? इसलिए मेरी व्यासपीठ कहती है, इतनों में से कोई निकलता है शुद्ध। शास्त्र तीन प्रकार के जीव की बात करते हैं तब विषयी जीव अर्थात् हम सभी। अपनी पीड़ा क्या है? कौन कौन-सी पीड़ा है हमारी और आपकी? ये विषयी जिसमें मैं और आप आते हैं उसकी बात है। जो साधक कक्षा के हैं उनकी पीड़ाएं अलग है। आठ प्रकार की पीड़ा होती है।

आठ प्रकार की पीड़ा होती है विषयी की, मेरी और आपकी। एक शारीरिक पीड़ा। शारीरिक पीड़ा मुझे और आपको सभी को होती हैं। साधकों को भी होती है पर वे उसे नहीं गिनते। बाकी तो पीड़ा रामकृष्ण परमहंस को नहीं थी? यद्यपि वे तो सिद्ध है। रमण महर्षि को नहीं थी? बुद्ध को नहीं थी पीड़ा? महावीर स्वामी को पीड़ा नहीं थी? जिसस को पीड़ा नहीं थी? अपने जैसे संसारी सब को लागू पड़ती है ये चार प्रकार की पीड़ा। एक, जन्मते हैं तब अपने को पीड़ा होती है। खबर नहीं पर पीड़ा होती है। जन्म एक बड़ी पीड़ा है। पर धन्य है हिंदुस्तान जो जन्म के समय की पीड़ा को जन्मोत्सव में बदल ड़ालता है। उसे उत्सव में बदल देता है। बाकी जन्म पीड़ा है। अपने को नहीं पता पर अपनी माता को तो पीड़ा है ही न! प्रसूति की पीड़ा माँ को होती ही है। मृत्यु की पीड़ा अपने को थोड़ी कम होती है ये तो समझ में आता है। मृत्यु की पीड़ा अपने को, संसारियों को सताती है। ये अनुभव होता है। ज़रा यानी बूढ़ापा की-वृद्धावस्था की पीड़ा। और रोग, छोटे-बड़े रोग ये अपनी पीड़ा हैं। विषयी लोक को, अपने जैसों को ये चार पीड़ा है। इस पीड़ा को हम शारीरिक पीड़ा कहें। तो अपनी एक पीड़ा है शारीरिक पीड़ा। और किसी परम की शरण में जायें तो अपनी शारीरिक पीड़ा भी 'बेगि पाइअहिं पीर पराई।'

किसी समर्थ गुरु की, किसी शुद्ध संत की शरण में जाएं तो कहना नहीं पड़ता। अपनी शारीरिक पीड़ा को भी वो जान जाता है साहब! उसका नाम पीराई है। क्या है गांव का नाम? मैं भूल गया। विहळानाथ, विसामणबापू पास वो लड़का बोलता नहीं है उसे लाया। वैसे लगता चमत्कार है। ऐसा कुछ नहीं होता ऐसा लगेगा पर साहब! बहुत होता भी है। अपनी बुद्धि उसे कुबूल नहीं सकती। वैज्ञानिक उपकरण यदि कुछ कर सकते हैं तो ऋषियों के मुख से निकले वचन और मंत्र नहीं कर सकते हैं? हमें ये स्वीकार करना चाहिए। विहळानाथ बापू कहते हैं, 'रामराम' बोल बच्चा। और ऐसा कहते हैं कि जीभ छूट जाती है और 'रामराम' बोलने लगता है! हो सकता है। अमुक बाबत बुद्धि से पर है। अपने यहां साधु-संतों लंगड़े को पैर देते थे और अंधे को आंख देते थे और कोढ़ी का कोढ़ मिटाते थे। सब कुछ अपने यहां होता था।

दूसरी मानसिक पीड़ा। मानसिक क्लेश किसे छोड़ते हैं? और तुलसीदासजी ने 'उत्तरकांड' में जब मानसिक रोगों का वर्णन किया तब कहा कि ये मानसिक पीड़ा तो सभी को है। परंतु उसमें से कोई विरला ही उसे पहचान पाया। बाकी यह रोग सभी को लागू पड़ता है। अधिकतर लोग कहते हैं न कि हमें सब कुछ है पर ऐसी मानसिक पीड़ा बहुत रहती है। तुलसीदासजी ने मानसिक पीड़ा की पूरी लिस्ट दी है 'रामायण' में। पर उसको छानछान के तीन मानसिक पीड़ा मुझे और आपको बहुत लगती रहती है बाप! क्रोध ये बहुत बड़ा रोग है। बहुत क्रोध अच्छा नहीं है। ये पांच भूत का शरीर था और बड़े-बड़े ऋषिमुनिओं अस्सी-अस्सी वर्ष तप करके भी शाप देते थे! क्रोध बिना शाप निकलता ही नहीं। हमें लगेगा, इतने वर्ष की तपस्या कहां गई? शाप ही दिया! मेरे तुलसी कहते हैं, 'क्रोध के द्वैत बुद्धि बिनु' जब अपने को दूसरा दिखता है, पराया दिखता है तब क्रोध चढ़ता है कि तू मुझको कहेगा? तू मुझको सुनायेगा? ऐसा कह-कहकर क्रोध आता है; जब दूसरा दिखता है। क्रोध एक पीड़ा है समझदार मनुष्य के लिए। भगवान राम ने इन सभी मनोवैज्ञानिक कमज़ोरियों को अपने उपर लिया है साहब! भगवान कभी-कभी क्रोध करते हैं। सुग्रीव पर थोड़ा क्रोध आ गया कि ये आदमी, इसे राज मिल गया, स्त्री मिल गई, सब मिल गया इसलिए मेरा काम भूल गया? और तुलसी तुरंत मार्जन करते हैं, 'जासु कृपा छूटे मद मोहा।' हे उमा, जिसकी कृपा से मदमोह, सभी विकार दूर जाते हैं ऐसे हरि को किसी दिन क्रोध आयेगा? पर ये तो उनका नाटक था।

पांचभूत का शरीर धारण करोगे तो खीज आयेगी ही, रीस चढ़ेगी। रीस में और खीज में अंतर है। रीस उसे कहेंगे कि जो उतर जाये। थोड़ी मनुहार करें यानी रीस उतर जाएगी। खीज़ है उसकी उम्र बहुत लंबी है। ये बदला लिए बिना मुक्त नहीं करती। पांचभूत का शरीर हो उसे खीज थोड़ी चढ़ती है। परंतु हम अपनी कोठरी में सोते हो तो हमें आदत होती है कि हम को पंखा कितने पर अनुकूल है उतने पर कर देते हैं। दो पर अनुकूल है तो दो पर। एक पर अनुकूल हो तो एक पर। उसी तरह हमें क्रोध की स्वीच किसी गुरु के पास से लेनी चाहिए कि कितना क्रोध करना? तो अड़चन नहीं आयेगा। पांचभूत का शरीर धारण किया हो उसे अमुक वस्तु का लोभ जागेगा। ये सब स्वाभाविक है, नैसर्गिक है, कुदरती है। तुलसी को लोभ नहीं जगा? पांचभूत का शरीर होगा उसमें कामना जगेगी; स्वाभाविक है।

मानसिक पीड़ा की बात मैं कहा करता हूं, तो मुझे और आपको सब को बाधा ड़ालती है। इन तीन वस्तुओं का ध्यान रखना बाप! हम दूसरे से द्वेष करते हैं वो बड़ी पीड़ा है। हम दूसरे की निंदा करते हैं वो बड़ी मानसिक पीड़ा है। और हम दूसरे से ईर्ष्या करते हैं वो मानसिक पीड़ा है। और इनसे कभी-कभी देखते हैं कि धर्मजगत भी बाकात नहीं रहा है! आप कल्पना तो कीजिए! सब को लागू न पड़े परंतु तथाकथित तत्त्व जो हैं वो एक-दूसरे की ईर्ष्या तो करते ही हैं! ये बड़ी से बड़ी मानसिक पीड़ा है बाप! काम एकदम निर्मूल न हो तो बहुत चिंता नहीं करनी चाहिए।

क्रोध, काम, लोभ; हम जीव हैं; होगा थोड़ी-थोड़ी। शुकन के लिए रखना चाहिए। और वैसे भी बातें करते हैं तो कहां उसके बिना रह सकते हैं? हम अपने आपको बहुत धोखा देते रहते हैं। हम अपने आपके साथ चाल चलते हैं। हम अपने आपको ठगते हैं। बाकी अमुक तो कृपा हो तो ही शक्य होगा। बाकी मुश्किल है। तो काम, क्रोध, लोभ की बहुत चतुर को चिंता नहीं करनी चाहिए। हां, उसकी मात्रा बढ़नी नहीं चाहिए। भजन करके उसे कंट्रोल करने की बात है। पर मुझे करबद्ध प्रार्थना करनी है कि इन तीनों की कोई जरूरत नहीं है। ये हैं मानसिक पीड़ा। और इससे कोई बाकात नहीं है। मैं अपने आपको आपके साथ रखकर बोल रहा हूं। ये सब मानसिक पीड़ा है। ये सब मनोरोग है। ईर्ष्या, निंदा, द्वेष जरूरी नहीं। हम द्वेष न करें तो अपना बी.पी. बढ़ जाएगा? हम निंदा न करें तो हमारा डायाबिटीस बढ़ जाएगा? हम किसी की निंदा न करे तो हमें कुछ दूसरा होने लगेगा? कुछ नहीं होता। ये तीन तत्त्व जरूरी नहीं है। काम, क्रोध, लोभ तो फिर भी

हम मनुष्य हैं, हमें स्पर्श करेगा। इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। पर निंदा, द्वेष और ईर्ष्या ये हमारी मानसिक पीड़ा है। इनके कारण हम दु:खी होते हैं।

तीसरी पीड़ा है आर्थिक पीड़ा। आर्थिक पीड़ा यानी लड़के-लड़की की शादी हो, सुविधा न हो और आर्थिक तंगी के कारण जो पीड़ा होती है। अथवा तो आर्थिक पीड़ा का दूसरा अर्थ ये भी कर सकते हैं कि किसी के पास अर्थ-धन बढ़ गया हो वह हम से न सहा जाता हो। उसकी आर्थिक पीड़ा हमें शुरू हो जाती है। ये एक वर्ष में इतना कैसे कमा लिया? इसको क्यों इतना सब मिल गया? चौथा, सभी को अपना-अपना कौटुंबिक क्लेश होता है। बहुत से लोग समझदार होते हैं। कथा सुनने के बाद विवेक का वर्धन करते हैं इससे घर की बात बाहर नहीं जाने देते। पर अंदर कौटुंबिक पीड़ा से पीड़ित होते हैं। अपने जैसे संसारियों की ये पीड़ा है। पांचवीं पीड़ा है अपने जैसे संसारियों की और वो है प्राकृतिक पीड़ा। ऋतु बदलती है और पीड़ा। चौमासा आये और हमें चिंता हो, बहुत हिम पड़ेगा तो मेरी खेती नष्ट हो जाएगी? चौमासा में अनावृष्टि हो और मेरा बोया सब खराब हो जाएगा तो? ग्रीष्म में बहुत गर्मी पड़े और फसल सूख जाये तो? ये सब प्राकृतिक पीड़ा है। छठ्ठी पीड़ा है काल्पनिक पीड़ा। कुछ भी न हो और हम जो ख्याल बांधते हैं! किसीने हमारे सामने केवल देखा हो तो भी हमें लगता है कि उसने क्यों मेरी तरफ देखा? ये काल्पनिक पीड़ा है, छठ्ठी पीड़ा। सातवीं पीड़ा है राजकीय पीड़ा। राष्ट्र का राजा ठीक न हो तो प्रजा को जो पीड़ा होती है उसे राजकीय पीड़ा कहते हैं। राष्ट्रीय कष्ट अयोध्या में भी आया। यद्यपि परिणाम स्वरूप सब कुछ ठीक हुआ पर उस घड़ी सब को भोग बनना पड़ा। वह पीड़ा अर्थात् राजकीय पीड़ा। और आठवीं पीड़ा है सामाजिक वातावरण की पीड़ा। अगल-बगल का समाज उसकी पीड़ा। ये आठों प्रकार की पीड़ा जिसके पास हम जायें और तत्क्षण हम इस पीड़ा से मुक्त हो जाएं उसे पीर समझना चाहिए।

जिसमें ठसाठस और नखशिख पीराई भरी है ऐसे किसी महापुरुष के पास हम जाते हैं तब हमारी शारीरिक पीड़ा अपने आप दूर होने लगती है। अपनी आर्थिक पीड़ा दूर होती है। वह कहीं रूपये से हमें भर नहीं देता। आप किसी साधु के पास जायें तो वो कोई हमारा खाता नहीं खुलवाएगा। पर पहुंचा हुआ साधु उसके पास जायें तब अर्थ सामान्य लगने लगता है। हमारी आर्थिक पीड़ा चली गई। किसी विहळानाथ जैसे महापुरुष के पास जाएं अर्थात् अपनी तीसरी पीड़ा मानसिक पीड़ा चली जाती है। हमें लगता, किस भव के लिए मैं क्यों दूसरे की निंदा करता हूं? हमारी मानसिक पीड़ा दूर होती है। किसी ऐसे पहुंचे महापुरुष के पास जाते हैं तो अपनी आर्थिक, सामाजिक, मानसिक, कौटुंबिक क्लेश कमतर होते हैं। आश्रित होता है उसके कुटुंब परिवार का भी वो पालन करते हैं। हमारी कौटुंबिक समस्या को हर ले उसका नाम पीराई। अपनी सामाजिक समस्याओं का जवाब देता है। अपने सभी बयानों ने बहुत से सामाजिक प्रश्नों का निराकरण किया है साहब! किसी भी धर्म का भेदभाव रखे बिना इन सब स्थानों समूह लग्न करवाते हैं। ये सामाजिक समस्याओं का जवाब है। भूखों को रोटी खिलाते हैं आदर के साथ। सामाजिक समस्या का ये जवाब है। शौचालय बनवा देते हैं। सामाजिक समस्या का जवाब है। अपनी ये कोई भी देवस्थली छूत-अछूत का भेद नहीं रखती है। ये सामाजिक समस्या का जवाब है। पीर वो है जो हमें ऐसी सामाजिक समस्याओं से भी मुक्ति दे।

अपनी काल्पनिक पीड़ा। किसी बुद्धपुरुष के पास जाएं तब बिना कारण जो हम दु:खी होते हैं उससे वो हमें मुक्त करता है। और प्राकृतिक पीड़ा। जैसा मैंने ऋतु का कहा वैसी समस्याएं आयें, जब अकाल पड़ा हो; दुष्काल पड़ा हो तब पहले रसोईखाना किसने खोला है? प्राकृतिक समस्या का जवाब भी ऐसी संस्थाओं ने और साधु-संतों ने दिया है। जिसका मकान गिर गया उसका मकान बनवा दिया। राष्ट्रीय समस्याओं में भी शहीद होते हैं उनके लिए ये साधु कहीं पीछे नहीं रहे। राष्ट्रीय समस्या के सामने, सामाजिक समस्या के सामने भी धर्मजगत ने अपना जवाब दिया है। मेरे कहने का अर्थ ये है कि ये हैं मेरे और आप जैसे विषयी जीवों की पीड़ा। और किसी पर विश्वास करके उनकी शरण में जाएं तो अपनी पीड़ाओं से मुक्ति मिले। आठ प्रकार के कष्ट विश्व प्रसिद्ध है। और ऐसी पीड़ाओं को हरे वो पीर।

अब साधक की पीड़ाएं। जो थोड़ी साधना करता है, जो किसी को पाने के लिए यात्रा पर निकलता है, मार्गी बना है, मार्ग पर चढ़ा है उसकी थोड़ी पीड़ा है। पहली पीड़ा यह है कि शुरूशुरू में हम साधना करते हैं, भजन करते हैं जो कुछ भी हम करते हो गुरुकृपा से उसमें पहली पीड़ा ये होगी कि आप किसी का कुछ न बिगाड़े हो, आप भजन में रुचि लेते हो, तो भी बिना कारण आप की निंदा करनेवाले तत्त्व चारों तरफ से घेरते हैं कि ये कब का बड़ा सिद्ध हो गया? इसे पीराई कहां फूट निकली? शुरूआत होती है तब हमें उसकी असर होती है कि ये

बिना कारण? उसकी पहली पीड़ा है। और किसी भी कारण से जब भजन घटने लगे वो साधक की दूसरी पीड़ा है। मेरा भजन घट गया? गत वर्ष मेरा भजन था उतना इस वर्ष में भजन नहीं कर सका, यह साधक की दूसरी पीड़ा है। और वैराग्य का कम होना, मूल लक्ष्य भूल जाना ये साधक की तीसरी पीड़ा है। और चौथी पीड़ा है साधक की कि साधना सकाम शुरू हो गई, जो निष्काम करनी थी। साधना के पीछे हेतु जुड़ गया कि मुझे प्रतिष्ठा मिले, मुझे लोग अलग तरह से देखे। मैं समाज के समक्ष भिन्न रूप से उभरूं। ऐसे जो लक्ष्य कुछ हो वो चौथी पीड़ा है। मैली विद्या (मारण-जारण) है या नहीं मुझे नहीं मालूम। पर लोग ऐसा कहते हैं कि मेली विद्या के साधक बहुत साधना करते हैं। कठिन भी होती है। पर उसका हेतु होता है कैसे दूसरे को बोतल में उतारना! कैसे दूसरे को दु:खी करे? ये सब करते हैं ये मलिन हेतु से तांत्रिक प्रयोग करनेवाले लोग। गांव में रहनेवाले भाई-बहनों को मुझे इतना ही कहना है कि ऐसा कुछ आपके सामने आये तो इसमें नहीं पड़ना। रामनाम रटें, हरिनाम बोलें, बस। कोई आपसे कहे कि यह नाम कमजोर है, ये नाम बड़ा है! ये मंत्र तो ऐसा है, वो मंत्र ऐसा! इसमें अधिक न पड़े। मूल रामनाम ही है। एक वस्तु समझ लीजिए; अपने आपको मत ठगना। रामनाम तमाम धर्मों का मूल है। फिर अपने मलिन हेतु के लिए हम कहें कि रामनाम में कुछ नहीं है! ये तो ठीक है! ये मंत्र नहीं लेना चाहिए! मैं आपको धर्मभ्रष्ट करने नहीं आया हूं। जागृत करना ये मेरा काम है साहब! रामनाम मूल है। और अपने गांवों में तो रामनाम ही था। नये रहने आये उन्होंने थोड़ा उल्टा कर दिया है। बाकी तो यही था।

तीसरी समस्या है साधक की वैराग्य में आनेवाली कमी। आप साधना करें, भजन करें तो उसके विघ्न बहुत आयेंगे। पवित्र सा आश्रम हो और शांति से आप भजन करते हो तो अमुक लोग आते हैं और कहते हैं, बाबा, ये दो-दो रूम में आप क्या करते हो? लीजिए हम आपको दान देते हैं। चार ए.सी. रूम बनवाओ। फिर बिल तो बाबा को भरना है! चार कमरें करा देंगे उसमें अपना वैराग्य घटने लगता है। क्योंकि हम जीव हैं। वैराग्य न घटे तो समाज की सेवा के लिए हमें स्वीकार करना चाहिए। वैराग्य घटना नहीं चाहिए। किसी बुद्धपुरुष के पास हम जायें तो वह हमें कंट्रोल करेगा कि बस भाई हां! बहुत विस्तार हो गया! वैराग्य घटता है ये साधु की पीड़ा है। और जो बुद्धपुरुष है, जिसके हम आश्रित हैं उसके पास जायें तो वो बहुत-सी पूर्ति कर देता है, खूब भर देता है। अथवा तो सकाम साधना जब अलग ढ़ंग से अपनी साधना कुछ शुरू होती है उसमें से हमारा गुरु हमें रोकता है कि रहने दे, मैं तुझे मिल गया फिर तुझे दूसरी कामना करने की जरूरत क्या है? गौरीशंकर शिखर से ऊंचा कोई शिखर नहीं है। और वो तुझको मिल गया है फिर तुझे कामना करने की क्या जरूरत है? तो साधक की समस्याओं को भी कोई पीराई से भरपूर पीर मिटाता रहता है।

सिद्ध की पीड़ा। यदि सिद्ध को समझ में आ जायें तो ये उसकी पहली पीड़ा है सिद्धि का अहंकार। यह पहली पीड़ा है क्योंकि बहुत बार अभी सिद्धपना आता न हो तब तक तो दूसरे हमें चढ़ा देते हैं कि तुम तो सिद्ध हो! तुम तो पहुंचे हुए हो! सिद्धि का अहंकार सिद्ध की पहली पीड़ा है। दूसरी पीड़ा है सिद्धाई की, अधिकतर केवल अमुक प्रकार की विद्या से सिद्धि आई हो, रामनाम का भजन न हो तो पतन कब हो जाएगा इसका पता नहीं चलेगा। ये दूसरी पीड़ा होती है। सिद्धों का ये खतरा, ये पीड़ा है पतन। और चोटी से गिरेगा तो सीधे खाई में जाएगा। अधिकतर पतन ये सिद्धों की पीड़ा है। तीसरी और अंतिम पीड़ा, साधना का आरंभ किया हो सिद्ध होने के लिए परंतु जिसकी साधना करते हो, जिस तत्त्व की साधना की और सिद्धता प्राप्त करने की योजना की हो उसके बदले जिसके आधार पर सिद्धाई का आरंभ किया हो उस परमतत्त्व का इन्कार कर दे कि मैं हूं; अब राम नहीं, अब कृष्ण नहीं, अब शिव नहीं! अब हम स्वयं! यह सिद्धाई का तीसरा खतरा है। उसे अमुक समय तक सफलता मिलेगी पर शांति किसी दिन नहीं मिलेगी, विश्राम किसी दिन नहीं मिलता। तीन खतरे सिद्धों के हैं। परंतु कोई विहळानाथ जैसे नखशिख महापुरुष के पास जाये तो उसको भी इन तीनों खतरों से मुक्ति मिलती है।

चौथा और अंतिम जीव का प्रकार जो 'मानस' की गणना में नहीं है परंतु जो मेरी व्यासपीठ कहती रहती है, शुद्ध। मुझको ऐसा लगता है, खबर नहीं है, बहुत पक्का नहीं है इसलिए अधकचरी बात करूंगा। मुझे ये थोड़ा-थोड़ा समझ आता है संतों की कृपा से कि शुद्ध वो है जिसे कोई पीड़ा हो ही नहीं। मेरा तुलसी जो 'विनय' में लिखता है। शुद्ध को पीड़ा नहीं होगी। किसी भी प्रकार की समस्या नहीं होगी; कोई भी क्लेश नहीं होगा; कोई भी संताप नहीं होगा। अपनी गंगासती को पूछे तो ऐसा कहेगी कि 'सुख ने रे दु:खनी जेने हेडकी न आवे पानबाई।' और जो-जो अपने आप को शुद्ध मान बैठा हो ऐसे मनुष्य को जब ये समस्याएं और पीड़ाएं सतायें तब उसे समझ लेना चाहिए कि अभी हम उसमें नहीं हैं। और वैसे तो जीव का स्वभाव पहले से ही शुद्ध है। ये सब बिगाड़ा है हमने! बाकी मैं नहीं मानता कि जो शुद्धता को पाया हो उन किसी को कोई भी पीड़ा हो सकती है। दुनिया को दिखता है।

नरसिंह मेहता जेल में गए तो जूनागढ़ में कितने लोग कहे होंगे कि लो, बोलो! बहुत बड़ी भक्ति थी न! गया न जेल में! अब दिखा! पर मैं नहीं मानता कि नरसिंह को पीड़ा हुई होगी। क्योंकि नरसिंह वो नागर शुद्ध था। इस इन्सान ने बहिर् स्वच्छता और भीतरी पवित्रता अभियान छ: सौ साल पहले शुरू किया था। और उसमें भी मध्यकाल में भक्ति के दोनों किनारों में जब बाढ़ आई तब बहुत बड़ा काम हुआ साहब! सुर आते हैं, मीरां आती हैं, तुलसी आते हैं और सब आते हैं। हम आज तक आये तो विहळानाथ आते हैं। थोड़े वर्ष पीछे जाएं तो गंगासती और अपने सभी स्थानों में जो-जो महापुरुष आये हैं इन सब ने यही काम किया। भक्ति प्रवाह ने बहुत काम किया है। भक्ति ये सनक का काम नहीं है। भक्ति कुछ अलग ही तत्त्व है साहब! अद्भुत तत्त्व है। नारद को पढ़ना पड़ेगा। शांडिल्य को पढ़ना पड़ेगा। तो ही शायद समझ में आये। या तो मायला को पढ़ना पड़ेगा। तो ही समझ में आये। ऐसा है भक्तितत्त्व। और ये नरसिंह-

भूतळ भक्ति पदारथ मोटुं ब्रह्मलोकमां नाहीं रे,
पुण्य करी अमरापुरी पाम्या अंते चोर्यासी मांही रे।

नरसिंह शुद्ध है। उसे कोई पीड़ा नहीं। जेल में बंद कर दो। जाति बाहर करो, करो! शुद्ध को मैं मानता हूं वहां तक कोई पीड़ा नहीं होनी चाहिए। उस पर गुरुकृपा इतनी होती है कि उसकी शुद्धता को कोई आंच नहीं आती साहब! और अपना स्वरूप शुद्ध है ये हमें पता नहीं है! मीरां शुद्ध है, हां साहब! वो ऐसा कहती हैं कि मुझे दर्द है। पर वो पीड़ा कोई सामाजिक पीड़ा या मानसिक पीड़ा नहीं है। मीरां को कोई काल्पनिक पीड़ा भी नहीं है। मीरां बहुत सरल है। मीरां बहुत शुद्ध है। उसे कोई चिंता नहीं। उसे ज़हर की भी चिंता नहीं है। क्योंकि वो शुद्ध तत्त्व है।

तो 'मानस-पीराई' है इस कथा के केन्द्र में। गत कल हमनें कथा का प्रारंभ किया तब क्रमश: देखा कि तुलसीदासजी ने अपने नेत्रों को गुरु के चरणरज से पवित्र किए फिर पूरा जगत उन्हें ब्रह्ममय भासित हुआ। सब को प्रणाम करते करते तुलसी ने हनुमानजी को प्रणाम किया। तुलसी ने भगवान के साथ जो सेवक और सखागण थे उन सब की वंदना की। उसके बाद सीतारामजी की वंदना की। और फिर कथा में जो मूल वस्तु है, जो बारंबार मैं प्रेमपूर्वक आग्रह कर रहा हूं उस रामनाम की महिमा गाया। रामनाम की वंदना तुलसी ने नौ दोहे में पूर्णांक में की। बहत्तर पंक्तियों में 'रामायण' की महिमा गायी क्योंकि मूल में हरिनाम है।

तो कथा क्रम में तुलसीदासजी ने रामनाम की महिमा गायी। और फिर यह कथा कैसे सर्जित हुई उसका इतिहास कहा कि सब से पहले शंकर भगवान ने कथा की रचना की। समय आया तब भवानी को कथा सुनाई। उस शिव से कागभुशुंडि को मिली। उसने ये कथा गरुड को सुनाई। वहां से ये कथा धरती पर बिलकुल नीचे सपाट भूमि पर प्रयाग में आयी, जहां परम वैरागी याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाज को सुनाई। और तुलसी कहते हैं, वही कथा वराह क्षेत्र में मैने अपने गुरु से सुनी। पर उस समय मेरी नादान बुद्धि, इसलिए ये कथा मुझे बार-बार कहके समझाये और कुछ मेरे मन में बैठा तब मैंने निश्चित किया कि मैं उस कथा को लोकबोली में, लोकभाषा में भाषाबद्ध करूंगा। ज्ञानघाट पर शिव ने गाया पार्वती के सामने। कर्मघाट पर याज्ञवल्क्य ने भरद्वाजजी के सामने कथा सुनाई। वही कथा कागभुशुंडि ने उपासना घाट पर बैठकर गरुड को सुनाया। शरणागति के घाट पर बैठकर तुलसी ने अपने मन को और संतों को ये कथागान किया। ऐसी कथा तुलसी ने गुरुकृपा से शुरू की और फिर प्रयाग में तुलसी हम सब को ले जाते हैं जहां याज्ञवल्क्य महाराज से भरद्वाजजी प्रश्न पूछते हैं कि महाराज, रामतत्त्व क्या है? याज्ञवल्क्य महाराज हंस पड़े कि महाराज, आप तो राम के पक्के उपासक हैं पर मूढ़ की भांति प्रश्न पूछ रहे हैं क्योंकि आप गूढ़ राम की कथा का श्रवण किये हैं। आप जैसा श्रोता मुझे मिले तो मैं जरूर रामकथा गाऊंगा। याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाजजी के सामने रामकथा का आरंभ किया और फिर शिवजी की कथा से कथा शुरू हुई। पूरा तुलसी का समन्वय सेतुबंध। कथा राम की पूछी है और उसका आरंभ भगवान शंकर की कथा से। ये था सेतुबंध। यह था जोड़ने का काम। पहले शिवकथा आयोजित की। भगवान शिव सती को लेकर कुंभज ऋषि के यहां कथा सुनने जाते हैं, वहां से कथा का प्रवाह शुरू होता है।

हम दूसरे से द्वेष करते हैं ये बड़ी मानसिक पीड़ा है। हम दूसरे की निंदा करते हैं ये बड़ी मानसिक पीड़ा है। और हम दूसरे से ईर्ष्या करते हैं ये मानसिक पीड़ा है। और इसमें से कभी-कभी देखते हैं कि धर्मजगत भी बाकात नहीं रहा! ये सभी मानसिक पीड़ा है। ये सभी मनोरोग है। ईर्ष्या, निंदा, और द्वेष जरूरी नहीं है। हम द्वेष न करें तो हमारा बी.पी. बढ़ जाएगा? हम निंदा न करें तो हमें डायाबिटिस बढ़ जाएगा? हम किसी की ईर्ष्या न करें तो हमें कुछ अलग होने लगता है? कुछ नहीं होता। ये तीनों तत्त्व जरूरी नहीं है।

मानस-पीराई : ३

पीराई से भरा पीर हमारी पीड़ा हरता है

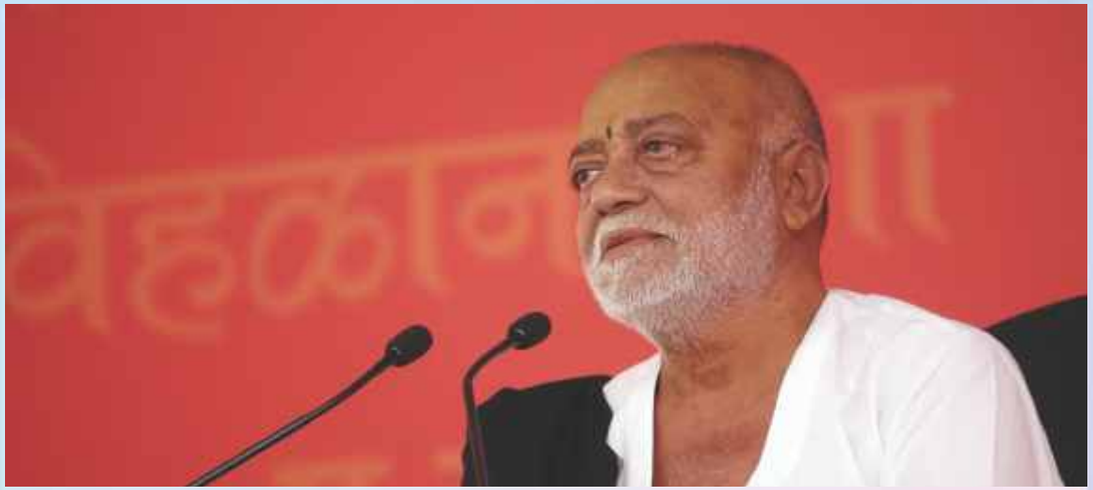

आज गांधी निर्वाण दिन है, तीस जनवरी, जिसे अपना राष्ट्र 'शहीद दिन' के रूप में मनाता है। आज के दिन ठीक ग्यारह बजे पूरे देश में दो मिनट का मौन रखा जाता है। समस्त राष्ट्र विश्व वंदनीय पूज्य गांधीबापू के शहीदी के इस दिन पर संस्कृति के लिए, सभ्यता के लिए, राष्ट्र के लिए और विश्व के लिए जिसने उपकारक काम किया, अपना बलिदान दिया ऐसे सभी लोगों को श्रद्धांजलि समर्पित करता रहा है। हम सभी कथा के प्रारंभ में विश्व वंदनीय गांधीबापू तथा तमाम शहीदों को अपना प्रणाम समर्पित करते हैं। और कथा के प्रवाह में भी ठीक ग्यारह बजे मैं अपनी घड़ी के अनुसार दो मिनट मौन रहूंगा। हम सभी मौन रहकर अपने राष्ट्र को अंजलि देंगे। परंतु कथाप्रवाह में प्रवेश करूं उससे पहले दो मिनट-

रघुपति राघव राजाराम पतित पावन सीताराम।
ईश्वर अल्लाह तेरो नाम सब को सन्मति दे भगवान।
सीताराम सीताराम भजमन प्यारे सीताराम...

तो बाप! गांधी निर्वाण दिन पर ग्यारह बजे हम मौन तो रहेंगे ही पर फिर एक बार विहळानाथ के इस पावन धाम से सभी संतों और माँ की उपस्थिति में हम सभी राजघाट पर गांधी की समाधि पर अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं। एक सौ पच्चीस वर्ष से इस देश में गांधी द्वारा स्वच्छता अभियान चल रहा है। और भारत सरकार तथा सभी घटक भी उसे आगे बढ़ा रहे हैं। मैं बारंबार कहता हूं कि सनातन धर्म ने तो युगों से स्वच्छता अभियान शुरू किया है। साधु-संतों ने, भक्तों ने, महापुरुषों ने, आंतर्-बाह्य शुद्धि का काम जगत में किया है। परंतु आज के दिन गांधीबापू के स्मरण में हम अगल-बगल जहां-जहां संभव हो स्वच्छता रखें।

दूसरा, मैं वर्षों से कहता रहा हूं वो आज कहता हूं फिर से कि हो सके तो आप सभी मेरे श्रोताओं, किसी पर दबाव नहीं है, पर मेरी एक प्रार्थना जरूर है आप सभी से गांधीबापू के निर्वाण दिन पर आप सभी वर्ष में थोड़ी खादी खरीद कर खादी पहनना जिससे छोटे-छोटे आदमियों को रोज़गार मिले। मेरी व्यासपीठ, मेरे ठाकुरजी सभी वर्षों से खादी पहनते हैं। तलगाजरडा के देव मंदिरों पर धजा भी खादी की फरकती है। मेरे 'रामायण' की पोथी भी खादी का वस्त्र पहनती है। और मैं तो स्वाभाविक खादी ही पहनता हूं। ये दूसरों जैसी मेरी अपील नहीं है, इसे ध्यान रखना। मेरी वर्षों से यह अपील है। दूसरे तो अमुक हेतु से अपील करते हैं क्योंकि अमुक कारण है। मेरी अपील सनातन है। मैं कोई ये विज्ञापन करने नहीं बैठा हूं खादी ग्रामोद्योग भंडार का। पर गांधीबापू ने कहा था कि खादी वस्त्र नहीं, वृत्ति है। एक वृत्ति निर्मित होती है। और मेरे श्रोता ये सब करते हैं इसका मुझे आनंद है। मैं तो ऐसा आप से कहूंगा कि अच्छे प्रसंग पर, मंगल प्रसंग पर, अपने जीवन में सभी मंगल प्रसंग आते ही हैं, उसमें एकाध-दो प्रसंग

ऐसा रखना कि उसमें किसी को साड़ी या वस्त्र देना हो तब खादी का ही दें। उसे अच्छा भी लगेगा और वो पहनेगा। दबाव नहीं है। व्यासपीठ किसी दिन दबाव नहीं देती। प्रार्थना अवश्य करूंगा। खादी की एक महिमा है। केवल व्यासपीठ से ही बोल रहा हूं। दूसरे किसी आधार पर नहीं कहता, ये लिख लेना। कोई दुकान, कोई बोर्ड, कोई सरकार सब यहां से दूर हैं। मेरा एक विवेकपूर्ण डिस्टन्स होता है सब से। मुझे खादी बहुत पसंद है। मैंने खादी काता है। मैंने कपड़ा सिला भी है। और इससे इस खादी के साथ मेरा आत्मीय संबंध हो गया है। इसलिए आप से विनती करता हूं। और आज ऐसा दिन है इसलिए, बाकी करना है या न करना, आप सभी मुक्त हैं। किसी पर दबाव नहीं है। पर मुझे पता है, विदेश से आनेवाले रामकथा को समर्पित मेरे सभी लोग साल में दो-पांच जोड़ी तो खादी पहनते ही हैं, रखते ही हैं। बहुत अच्छा लगेगा। गांधी निर्वाण दिन पर इतनी प्रार्थना के साथ अब रामकथा। गांधी को प्रिय भजन-

वैष्णवजन तो तेने कहीअे जे पीड़ पराई जाणे रे...

'मानस-पीराई', इस कथा का विषय हमने रखा है। पीराई यानी क्या? पीराई किसे कहते हैं? कौन है वो पीर? जिसमें नखशिख पीराई भरी है। गतकल हमने साथ मिलकर संवाद के रूप में अपनी पीड़ाओं का वर्णन किया। ग्रंथकारों ने आठ प्रकार की पीड़ाओं का वर्णन किया है, जो विषयी जीवों की पीड़ा है। जैसे कि शारीरिक, आर्थिक, मानसिक, कौटुंबिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, प्राकृतिक। फिर साधकों की पीड़ा और फिर सिद्धों की तीन पीड़ा। साधकों की चार पीड़ा है। अपने जैसे विषयी लोगों की आठ पीड़ा। और कोई शुद्धबुद्ध पुरुष हरता है। यानी पीड़ा हरे वो पीर। पाळियाद का ठाकर, उसने दूसरे की पीड़ा हरी होगी किसी न किसी रूप में। यहां की पीराई में तुलसी की चौपाई भरी पड़ी है, 'मानस' पड़ा है। सब के पास 'रामायण' है, चौपाई है। और परिणाम स्वरूप समग्र पीड़ा को जाने वो पीर, इतना ही नहीं पर पीड़ा को हरे वो पीर।

'भगवद्गोमंडल' शब्दकोश में पीर और पीराई के बहुत अर्थ दिये गये हैं। पीर किसे कहेंगे? पीराई किसको कहेंगे? पीड़ा हरे वो पीर। पीड़ा जाने वो पीर। और पीड़ा हरी फिर भी मैंने हरी ऐसा किसी को खबर न पड़ने दे वो बड़ा पीर। पीर के अनेक अर्थ हैं। विहळानाथ हो या कोई भी संतपुरुष या किसी भी जगह के आदिपुरुष अथवा तो इस पावन परंपरा में जो महापुरुष हो वे सभी। जिसने भजन किया है, जिसने साधना की है वे सभी थोड़ी बहुत अनुभव कर सके हैं कि दूसरे की पीड़ा पांच तरह से हरी जाती है। पीर पांच तरह से दूसरे की पीड़ा हरता है, ऐसा तलगाजरडा की समझ में आया है।

पहला है स्पर्श करके पीड़ा हरता है। हमें बहुत छूने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। राह देखों कि कोई बुद्धपुरुष हमें छूए। राह देखो, कोई पीर, कोई पैगंबर हमें छूए। हमारे कंधे पर हाथ रखे, हमारा हाथ पकड़कर पूछे, बच्चा कैसे हो? उस दिन समझना चाहिए कि मेरी पीड़ा अब गई। इसकी राह देखनी पड़ेगी। इन सब प्रत्यक्ष प्रमाणों में अनुभव कर सकते हैं ऐसी ये वस्तुएं हैं। बालक को पैर लागना नहीं आता पर उसकी माँ उसे गोद में बैठाकर उसके पैर के तलवे पर हाथ फेरती रहती है, माँ चरण स्पर्श करती है और बालक की वेदना दूर हो जाती है। पीरों का पीर मेरा राम, मेरा राघव, मेरा हरि, मेरे बाप, वो परमात्मा राम, उन्होंने क्या किया? जटायु के शरीर पर हाथ रखा। **'कर सरोज सिर रसेउ कृपा सिंधु रघुबीर।'** जटायु विक्षिप्त है। भक्ति को बचाने के लिए, समाज की शांति बचाने के लिए, समाज की शक्ति किसी दशाननी हाथ में चली न जाए इसके लिए जिस इन्सान ने शहीदी दी। कम आघात नहीं खाया उसने। एक तो वृद्ध था, उसमें रावण का प्रहार, पंख कट गई। उसकी पीड़ा पीरों के पीर मेरे राघव ने हरी।

मैं हमेशा कहता हूं कि ये साधु-संतों के चरणस्पर्श की महिमा है। मैं मानता हूं इस वस्तु को, पर कोई साधु-संत का व्रत हो तो अथवा तो विवेक हो तो ऐसा कुछ करो न कि वो सामने से कहे कि आ बच्चा, आ बेटा। और उस दिन पीड़ा गई। वाली-सुग्रीव युद्ध में 'किष्किन्धाकांड' में सुग्रीव और वाली दोनों युद्ध करते हैं और वाली ने एक मुष्टि का प्रहार किया। सुग्रीव को खून निकला मुंह में और वो भागा! भगवान के पास आकर फरियाद की कि कहते थे कि मैं उसे मार डालूंगा। आपने मुझे आश्वासन दिया था। भगवान के पैर नहीं पड़ा सुग्रीव। राम ने उसे छूआ है। अपना हाथ राघव ने सुग्रीव के शरीर पर फेरा। सुग्रीव के शरीर को राघव ने स्पर्श किया तो शरीर वज्र हुआ। 'मानस' के आधार पर, गुरुकृपा से, ये संतों के आशीर्वाद से ऐसा समझ में आता जा रहा है कि कोई पीराईवाला पीर हमें स्पर्श करे उस दिन अपनी पीड़ा दूर हो जाएगी बाप! कृपावंत करुणामय हाथ किसी को छू जाए न फिर जो होता है वो तो, कुछ अलग ही होता है। 'मूकं करोति वाचालं' मूक बोलने लगता है। ये आध्यात्मिक सत्य है।

एक धीर आदमी ने अपने पीर से पांच प्रश्न पूछे। तो एक धीर एक पीर से पूछता है पहला प्रश्न कि मेरे पीर, हे विहळानाथ, किसी भी पीर का नाम ले सकता हूं यहां;

हे रामदेव पीर, हे विहळानाथ, हे कबीरसाहब, हे नानक, हे तुलसी; ये सभी एक ही हैं साहब! हे गंगासती, हे हरिदास, हे ज्ञानेश्वर, हे इसरदानजी, जो-जो हो वो। ऐसे एक पीर पुरुष को एक धीर ने प्रश्न किया। हे पीर, हे दातार, हे साधु, हे फ़कीर जो नाम देना हो दो। क्योंकि पीर के बहुत अर्थ 'भगवद्गोमंडल' ने दिए हैं। मैं पढ़ता था तब एक पाठ आता था गुजराती में 'पीरनो तकियो।' वो पाठ बाद में मास्तर हुआ तब मैंने पढ़ाया भी। और हमारे परवाज़साहब का शे'र है-

शबभर रहा है खयाल में तकिया फ़कीर का।

तकिया मीन्स कुटिया। फ़कीर की झोंपड़ी, पीर का आवास, जहां वो बंदगी और साधना करता है, जहां वो स्वयं ही लोबान बनकर बैठा है। धूप होती रहती है, धूप होती रहती है लोबान की। उसे थोड़ी आग छूए यानी धूप होने लगती है। वैसे फ़कीर वो है कि जिसके चारों तरफ से थोड़ा कष्ट पड़े तो सुगंध फैलती है, सुगंध फैलती है। स्वयं लोबान होता है साहब! और सुगंध शुरू होती है। शब यानी रात्रि। रातभर मेरे मगज़ में एक संत की कुटिया रहती है।

शबभर रहा है खयाल में तकिया फ़कीर का।
दिनभर सुनाउंगा तुम्हें किस्सा फ़कीर का।
हिलने लगे हैं तख्त उछलने लगे हैं ताज,
शाहों ने जब सुना कोई किस्सा फ़कीर का।

कोई फ़कीर का किस्सा सुना हो वहां अच्छे-अच्छों के ताज हिलने लगे और मस्तक के ताज उछलने लगे। साधु-संतों के लिए, पीराईवाले मनुष्यों के लिए भजन और बंदगी का सही समय रात है साहब! दिन में तो दुनियादारी सब निभानी पड़ती है। क्योंकि हम पंचभूत का शरीर लेकर बैठे हैं। सब व्यवहार करना पड़ता है। ईश्वर ने रात बनाई। दूसरे का मुझे नहीं मालूम। बाकी साधुओं पर बहुत कृपा की रात बनाकर। रात बनाकर बहुत उपकार किया है साधुओं पर। तो एक धीर पीर को पूछता है पहला प्रश्न, हे पीर, पीराई किसे कहते हैं? और पीर ने धीर को जवाब दिया कि मन, वचन और कर्म से दूसरे का उपकार ही जिसके स्वभाव में जुड़ गया हो उसे पीर कहते हैं। अब 'मानस।'

पर उपकार बचन मन काया।
संत सहज सुनाउ खग राया।।

हे खगेश, हे गरुड, मन, वचन और कर्म से जिसे स्वाभाविक रूप से दूसरे का उपकार ही करना है, दूसरे का कल्याण ही करना है, दूसरे का हित ही करना है। इसीलिए तो फिर एक बार तुलसी की चौपाई कहूंगा-

परहित सरिस धरम नहीं भाई।
पर पीडा सम नहीं अधमाई।।

पीर, धीर को जवाब देता है पीराई का कि मन, वचन, कर्म से जो स्वाभाविक रूप से उपकार ही करता है उसका नाम पीर है; उसका नाम पीराई है। पीर से दूसरा प्रश्न पूछा है, पीराई का मतलब तो हमने सुना पर परायी यानी क्या? परायी की व्याख्या करूं इससे पहले ग्यारह बजने में चंद सेकेंड बाकी है यानी गांधी निर्वाण शहीद दिन, विहळानाथ की भूमि पर से हम सभी समस्त राष्ट्र के साथ दो मिनट का मौन समर्पित करते हैं।

साहब! भारत को आज़ादी मिली १९४७ में, इसके बिलकुल दस वर्ष पहले १९३७ में गांधीजी ने कहा था कि दस वर्ष के बाद सैंतालीस में मेरा भारत आज़ाद होगा। आर्षवचन था ये गांधी का। सभी सहमत थे। और फिर पूछा तो फिर आप के चेहरे पर उदासी क्यों है? तो कहते हैं, रामनाम के प्रताप से शायद मेरी इज्जत मेरे राघव रखेंगे। पर गांधी की चिंता ये थी कि भारत को आज़ाद होने के बाद मेरे देश के कर्णधार इस देश की क्या दशा करेंगे? और सच हुआ साहब! आज उनके निर्वाण दिन पर अंजलि में मैं कह रहा हूं, ये उनकी चिंता थी कि बाद में जो शासक आयेंगे, जो आयें वो राष्ट्र के नायक होंगे, कर्णधार होंगे, वो मेरे देश के अंतिम व्यक्ति तक पहुंचेगे कि नहीं? यहां सब समतापूर्वक रहेंगे कि नहीं? इसकी पीड़ा को लेकर गांधीजी गये थे साहब आज की तारीख को। ये तीस जनवरी को; मैं युवानों से प्रार्थना करता हूं कि तीस जनवरी को, गांधीबापू की दिनचर्या तो एक बार पढ़ो। वहां से पता चलेगा कि आदमी पहुंचा हुआ एक संत था। गांधी का तो टाईम टू टाईम सब चलता था। उसमें एक क्षण का अंतर नहीं होता। इतना अधिक पाबंद इन्सान। वो सुबह उठे तब से अंदेसा आता था कि सूरज डूबने की तैयारी है आज। उनका उस वक्त प्रार्थना सभा में बिरला हाउस में जल्दी जल्दी जाना भयभीत कर दे साहब! भय लगता है कि एक ज्योति के जाने की तैयारी है! राष्ट्र के कर्णधारों से एक साधु के रूप में व्यासपीठ से मेरी प्रार्थना है, गांधी के वचनों को याद रखना कि इस मनुष्य के मन में कौन-सी पीड़ा थी? गांधी को साधन बना दिया! जो साध्य था साधन बना दिया गांधी को। और इसमें कोई बाकी नहीं है। ये मुझको कहना है वो कह रहा हूं। खैर! सब को सन्मति दे भगवान! आज पाळियाद की भूमि पर मौन अर्पण। मेरे हज़ारों श्रोता एक सौ सत्तर देशों में बैठे होंगे उन सब ने मौन पाला होगा

टी.वी. के सामने। ये कोई सरकार नहीं करा सकती है साहब! उसकी औकात नहीं। वो तो मौन रहे होंगे या नहीं ये शंका है मुझे। रहे होंगे तो पग लागता हूं; न रहे हो तो मुझे उन पर दया आती है बाप!

दूसरा प्रश्न एक धीर ने पीर से पूछा कि परायी क्या है? तब कहा उस पीर ने कि दो वस्तु परायी है। तुलसी कहते हैं-

जननी सम जानहिं परनारी।
धनु पराव विष तें विष भारी।।

मुझे सूझता नहीं ये मेरी कमज़ोरी है, बाकी ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसका जवाब मेरे 'मानस' ने न दिया हो। मैं कोई अहोभाव में आकर उसे पचीसवां अवतार नहीं कहता साहब! यह भगवान का पचीसवां अवतार है। 'रामायण' मेरे ईश्वर का पचीसवां अवतार है। एक धीर पीराई से पूछता है कि पीराई का जवाब तो मिला पर परायी किसे कहते हैं, तब धीर को पीर ने कहा जिसके साथ व्यावहारिक और सांसारिक दृष्टि से हम जुड़े नहीं है उसमें बहन दिखे या पुत्री दिखे; जिसे ये सब अलग लगता है। अलग लगे यानी 'परायी' शब्द का अर्थ ऐसा नहीं है कि स्त्रियों का त्याग, स्त्रियों का तिरस्कार। इसके गलत अर्थ भी हुए है। स्त्री परायी इसलिए उसका तिरस्कार, उसका त्याग, उसका मुंह न देखना! ये सब अब बहुत दिन नहीं चलेगा! इक्कीसवीं सदी खूब जागरण की सदी है। और थोड़ी सोती होगी तो मैं जगाये बिना जानेवाला नहीं।

दुनिया में ईश्वर को भी जन्म तो माँ ने ही दिया है। किसी स्त्री ने ही दिया है। ईश्वर भी जब अवतरित हुए, उनका जन्म जब हुआ तब उसे किसी के पेर से जनमना पड़ा है। उसे किसी के गर्भ में ही जाना पड़ा है। बहुत से समारंभ मुझे ऐसे करने पड़ते हैं कि स्त्रियों का सम्मान हो, मंच पर सभी महापुरुष ही बैठे हो, उसमें ऐसा कभी होता है कि स्त्रियां मंच पर नहीं आ सकती! सम्मान उन स्त्रियों का ही होता है! नहीं आ सकती या तो कहा गया हो, तब मैं ही कहता हूं, मुझको तो सभी के प्रति पूज्यभाव है इसलिए कहता हूं, आप बैठो। मैं वो बहन जहां बैठी हैं वहां जाकर उनका सम्मान कर आऊं। न तो किसी का व्रत टूटेगा और मेरा तो व्रत सफल होगा कि हमारी व्यासपीठ किसीका तिरस्कार नहीं करती। हां, किसीका व्रत हो, नियम हो उसे हम न तुड़वाएं। पर वृत्ति तिरस्कार की नहीं होनी चाहिए। परंतु किसी साधु का उपवास का व्रत हो तो तुड़वाना नहीं चाहिए। किसी साधु का अपना व्रत हो अमुक अपने धर्म के अनुसार उसे नहीं तुड़वाना नहीं चाहिए। पर साधु के मन में तिरस्कार तो नहीं ही पैदा होना चाहिए। उपेक्षा करेगा, तिरस्कार करेगा वो साधु कैसे हो सकता है? सनातन धर्म ने यह कभी नहीं किया और 'रामायण' तो उसमें हस्ताक्षर करता है-

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

परायी वो है हे धीर, पीर बोले कि जिसको किसी स्त्री के प्रति तिरस्कार नहीं है, उपेक्षा नहीं है। या तो माताभाव से देखता है, या तो बहनभाव से देखता है, या तो पुत्रीभाव से देखता है। उसे कोई अस्पृश्यता नहीं। मर्यादा, व्रत ये सब उसकी जगह ठीक बराबर है पर मानसिक तिरस्कृत भाव नहीं है। उसे तिरस्कार वृत्ति से देखेगा वो पीर नहीं है। दूसरा, दूसरे का धन, उसको जो पराया माने, एक सम्यक् डिस्टन्स रखे; उसके मन में इतना ख्याल रहे अंदर से कि ये जगत ब्रह्ममय है परंतु मुझसे इस तरह नहीं देखा जाएगा, मुझसे इस तरह न बोला जाएगा, मुझसे इस तरह न होगा। यह मेरे लिए पराया है।

तीसरा प्रश्न धीर ने पीर से किया कि पुराई क्या है? हम नहीं कहते हैं कि पुराई कर दी है उसमें। खड्डा पूर्ण कर दिया। उसमें पुराई कर दी, भरती कर दी। यह तीसरा प्रश्न पीर से पूछा गया। पुराई क्या है? और वो शुद्ध-बुद्ध पीराई से भरा हुआ जवाब देता है कि हे बेटा, हे धीर, हे वत्स, पुराई वो है, इस जगत में पुराई एक ही तत्त्व कर सकता है, और वो है प्रेम। प्रेम ही पुराई है। प्रेम बिना आप किसी को परिपूर्ण नहीं कर सकते। अधूरा ही रह जाएगा। और जिसे आप प्रेम देते हैं उसे तो हमेशा ऐसा लगता है, शायद इ़कार आ जाये कि आहाहा...! दाता ने सब भर दिया। पर प्रेम करता है उसे तो ऐसा ही लगता है कि प्रेम अभी पूरेपूरा नहीं किया। इसलिए यह प्रेम अर्थात् सूफ़ियों की मोहब्बत या परमात्मा की भूमिका। स्वाभाविक ढ़ग से मन, वचन, कर्म से जो परहित करता है वो पीराई। अमुक तत्त्वों से तिरस्कार और उपेक्षा वृत्ति से मुक्त होकर और सम्यक् अंतर रखे वो पीराई। और प्रेम द्वारा सब को भरे, जो रास्ते में आये उसे भरे वो पुराई। हम तो गांव में रहनेवाले, हमें पता है कि बरसात पड़ती है और अपनी गलियों में पानी बहने लगता है तब जितने खड्डे आते हैं, पानी वहां पहले उन्हें भरने का काम करता है। उसकी अवगणना नहीं करता। उसको ओवरटेक नहीं करता। प्रेम एक ऐसा प्रवाह है कि पुराई करता चलता है, भरपूर करता आता है, इ़कार देता जाता है।

धीर ने चौथा प्रश्न पीर से पूछा, हे पीर, पोरवाई क्या होता है? अब पोरवाई का क्या अर्थ किया जाए? हम नहीं कहते कि आदमी पोर पोर बढ़ रहा है। किसी की

सराहना करते हैं। आदमी उन्नत होता है। पर बहुत ध्यान रखना होता है कि अहंकार भी न आ जाए। आप चाहे जितनी बड़ाई करो, उसका पौरुष का बखान करो, प्रशंसा करो, वो प्रशंसा सच हो, परंतु वो विवेक से स्मरण में रखता है कि यह तेज मेरा नहीं है। यह तेज उसका है। ये बड़प्पन मेरी नहीं, ये बड़प्पन उसकी है। यह पुरुषार्थ मेरा नहीं है। मेरे उपर किसी का हाथ है। बड़ाई करो कि मैं निमित्त बना, पर ये पोरसाईपना का जिसको किसी दिन अहंकार नहीं आता उसे पोरवाई कहेंगे।

पांचवां और अंतिम प्रश्न धीर का पीर से। उर्दू का एक शब्द है 'पारसाई।' पारसाई किसे कहते हैं? पारसाई का बहुत अर्थ है। जो अपने आप को पवित्र मानते हो, अपने आपको सिद्ध गिनते हो, अनेक रूप से अपने आपको जागृत मानते हो, जितनी जागृति अपनी होवे, वो किसको कहेंगे? तब वो पीर उसे जवाब देता है कि मिली हुई जागृति, मिला हुआ प्रकाश, मिली हुई समझ, ये सब यदि मैं अपना मान बैठूंगा तो मुझे धक्के मारेगा, चक्कर में डालेगा अथवा तो गंगासती के शब्दों में कहूं तो ऐसा कह सकते हैं कि जो निरंतर केवल और केवल वर्तमान में ही जीता है। वो पारसाईपन है।

शीलवंत साधुने वारेवारे नमीए पानबाई,
जेनां बदले नहीं व्रतमान।

तो कोई पीराई से भरा हुआ पीर हमारी पीड़ा हरता है। उसमें पीर हरना उसका पहला लक्षण है, स्पर्श द्वारा पीड़ा हरता है। पीराई से भरा कोई बुद्धपुरुष कोई पीर हमारी पीड़ा को हमें स्पर्श करके हरता है। फिर से एक बार सावधान करता हूं, कोई महापुरुष हो उसका व्रत हो उसका कोई नियम हो तो उसे स्पर्श करने के लिए भागदौड़ नहीं करना चाहिए। तो बाप! स्पर्श द्वारा पीड़ा हरता है वो पीराई से भरा हुआ पीर। दूसरा, मर्यादा भंग होती हो न तो किसी बुद्धपुरुष के सामने ऐसे टकटकी लगाकर देखना नहीं चाहिए। और खास करके बहनों से मेरी प्रार्थना है। एक मर्यादा, एक लज्जा है। पर हमें बहुत बार देखना नहीं आता! पता नहीं कितनी-कितनी आंखें लेकर देखते होते हैं! राह देखो। उसकी राह देखो कि कोई बुद्धपुरुष हमारे सामने देखे और हल्की-सी मुस्कुराहट दे दे। फिर एक बार-

वो मुस्कुराकर जब देखते हैं तो तबीयत सुधर जाती हैं,
इतना तो बताओ कि ईश्क करते हो कि इलाज करते हो?

क्या करते हैं आप? एक हल्की-सी मुस्कुराहट। उसे देखने दो। मेरा तुलसी 'विनयपत्रिका' में कहता है कि हे प्रभु, मेरे तेरे साथ बहुत नाते हैं-भाई, बहन, पति, स्वामी, दाता भिक्षुक 'तोहे मोहे नाते अनेक।' पर निर्णय मैं नहीं कर सकता। मैं तो संसारी आदमी हूं, तूं निर्णय कर कि तेरा मेरे साथ कौन-सा नाता है? पीराई से भरे पीर हमारे सामने कृपादृष्टि करते हैं और हमारी पीड़ा हरते हैं। 'रामायण' में रींछ और बंदरों को बहुत मारा राक्षसों ने। लंका के मैदान में शरीर बेदम कर ड़ाला! और रींछ तथा बंदर तो सब राम के बल से लड़ते थे। नहीं तो शाखाओं पर घूमनेवाले ये तत्त्व। पर जब सभी थक गए तब भगवान ने कुछ नहीं किया, हाथ नहीं फेरा उन पर, परंतु कृपादृष्टि से रघुनाथजी ने उन बंदरों की ओर देखा तब तो सभी पीड़ाएं दूर हो गई! ऐसा जोश आया रींछ और बंदरों को कि रावण को ऐसा कर डालें, वैसा कर डालें। उछलकूद करने लगे मानो पहाड़ो को पंख लग गई हो। पीराई से भरा कोई पीर मेरी और आप की पीड़ा को अपनी दृष्टि से टाल देता हैं। हमारी ओर देखता है। वह हमारा अवलोकन करता है स्पर्श से, दृष्टि से।

तीसरी वस्तु है पीराई से भरा पीर हमारी पीड़ा हरता है एक-दो वचन कह कर। एक-दो वचन काफ़ी है बाप! केवल ऐसा पूछ ले कि कैसे हो? क्यों नहीं दिखते हैं बाप! तब तो पीड़ा निकल भागी बाप! उस बुद्धपुरुष के सिवान से पीड़ा बाहर निकल जाती है।

चौथा, पीराई से भरा कोई विहळानाथ, कोई कबीर, कोई नानक, कोई रणुजावाला, जितने-जितने संत-महात्मा हो, प्रगट हो, अप्रगट हो, हम पहचानते हो, न पहचानते हो, हमारे सामने न बोले, हमारी ओर न देखे, हमें छूएं नहीं पर हमारे लिए विचार करते रहें न तो भी अपनी पीड़ा चली जाती है। कोई पीर हमारे लिए विचार करे, हरिस्मरण भूलकर हमारा स्मरण करे कि इस लड़के की हालचाल कैसी है? जहां जाते हैं वहां पागल बनकर पीछे घूमता है इसका सब कुछ ठीकठाक तो होगा न? वो निकलने के बाद ठीक से पहुंचा तो होगा न? ऐसा जिसके मन में स्मरण चलता है। कुछ भी बिना लिए-दिए वो हमारी पीड़ा हरता है; पीड़ा का नाश करता है। केवल पीर हमारा स्मरण करता है, हमारा विचार करता है अथवा हम दूसरे सभी आश्रय छोड़कर अपने पीर के लिए ही विचार करते हैं। हम भूल भी जाएं, स्मरण न करें, योग्य मौके पर भूल जायें, जब जरूरत होती है तब शरणागति विपरीत हो जाती है।

पांचवां और अंतिम अत्यंत स्थूल कहलायेगा परंतु इतनी हद तक कि जब आश्रित मुश्किली में होता है, तब किसी के यहां नहीं जाता हो, केवल अपने में, स्वरूप में लीन रहता हो किसीको पता न चले इस तरह आगे से प्रोग्राम बनाकर। और हमारे द्वार पर आकर खड़ा रहता है उस दिन समझना कि पीड़ा गई। एक-एक प्रमाण देखते जाइए 'मानस' का।

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर।।

हम सब को पता है कि रामजी का जनकपुर जाने का प्रोग्राम है ही नहीं। राजदरबार में और राजकुटुंब द्वारा जो प्रोग्राम तय हुआ है उसमें केवल दो, ये दो राजकुमार विश्वामित्र के साथ जायें, विश्वामित्र का यज्ञपूरा करा दें, बात खत्म। आगे की जनकपुरु तक की यात्रा का प्रोग्राम निश्चित प्रोग्राम में नहीं है। पर उसे अहल्या के आश्रम में दरवाजे पर पधारना था। जिसे समाज ने पत्थर मार मारकर पत्थर जैसा बना दिया था। राम को पधारना था अहल्या के आश्रम में और इसीलिए प्रोग्राम बनाया। ये भी अहल्या के पीड़ाहरण की प्रक्रिया। और इसी से राघव नंगे पैर चले हैं साहब! आप सच्चे हैं तो दुनिया चाहे जितना पत्थर मारे, आप को पाणा जैसा बना दे, पर आप धीरज रखिएगा। एक दिन राम बिराजने के लिए आयेंगे। स्वयंभू, मूर्तिमंत आकर खड़े हो जायेंगे। उस समय धैय धारण करें। चुप हुई अहल्या के द्वार पर मेरे राघव पधारे हैं। ऐसा लगता है कि अब स्मरण से पीड़ा नहीं जाएगी न ही स्पर्श से जाएगी, न वचन से जाएगी, नहीं दृष्टि से जाएगी उस दिन पूरे का पूरा हरि आकर द्वार पर खड़ा हो जाएगा उस दिन पीड़ा चली जाएगी। जिसमें पीराई है वो पांच प्रकार से हमारी पीड़ा का हरण करता है।

तो पीराई से भरी यह भूमि है, इसमें विहळानाथ की इतनी निर्मल परंपरा है, उसमें हम ऐसी बातें कर रहे हैं तब शेष समय में थोड़ी कथा का क्रम आप के समक्ष रखूं। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए कथा करते हैं। भरद्वाजजी ने पूछा, महाराज, रामतत्त्व क्या है? आप मुझे बताएं। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी को रामतत्त्व समझाने के लिए रामकथा का प्रारंभ करते हैं तब मंगलाचरण शिवकथा से किया है। ये था समन्वय; ये था सेतुबंध। तो पहले शिवकथा। शिव है द्वार रामकथा में प्रवेश करने का। एक बार के त्रेतायुग में, भगवान शिव अपनी धर्मपत्नी सती को लेकर कुंभज ऋषि के आश्रम में पधारें। कुंभज ऋषि ने दोनों की पूजा की। महात्मा ने शिव और सती की पूजा की इसलिए शिव ने तो इसका बहुत अच्छा अर्थ निकाला कि महात्मा कितने उदार हैं! परंतु शिव की धर्मपत्नी जो दक्ष की लड़की है उसने गलत अर्थ किया कि ये अभी से हमारे पग में पड़ रहे हैं और पूजा कर रहे हैं, ये क्या खाक कथा कहेंगे? राम की कथा तो सागर जैसी कथा है और ये महात्मा कुंभज है। अब गागर से जन्मा होगा तो सागर जैसी कथा कैसे कह सकता है? ऐसा उन्हें संशय हुआ। इस प्रसंग पर हमेशा कहा जाता रहा है इसलिए फिर से दोहरा रहा हूं कि कोई हमारी पूजा करता है तब यह हमारी योग्यता है ऐसा समझने के बदले अगले आदमी की उदारता है ऐसी समझ बनानी चाहिए।

कथा का प्रारंभ हुआ। भाईओं-बहनों, याद रखना, यह कथा तुलसी ने शुरू की फिर याज्ञवल्क्यजी ने प्रयाग में भरद्वाजजी के समक्ष यह कथा आगे बढ़ाई। 'मानस' में लिखा है-

रामकथा मुनि बर्ज बखानी।
सुनी महेस परम सुख मानी।

कथा तो कृष्ण की होती, स्वयं शिव की भी कथा होती, देवी भागवत होती, परंतु वक्ता ने रामकथा शुरू की क्यों? यहां जिज्ञासा तो नहीं हुई है कि रामकथा। पर वो महात्मा अपने आप रामकथा शुरू किए हैं। जिसको जिसका व्यसन होता है उसे वही आप अर्पण करोगे तो खूब आनंदित हो जाएगा। मेरे शंकर को रामकथा का व्यसन है। और इसलिए महात्मा को लगा कि रामकथा कहूं। अपने द्वार पर आये, जिसे चाय पसंद हो उसे चाय पिलाना चाहिए, जिसे कोफी पसंद हो उसे कोफी पिलाना चाहिए। जिसको धूप-दीप प्रिय हो उसे धूप-धुंआं देना चाहिए। और सांझ हो रही हो और जिसे संध्या पूजा की आदत हो उसे वो दिया जाना चाहिए। फिर से एक बार कहता हूं, गांधी निर्वाण दिन है। इतने प्रेम से कथा सुन रहे हैं साहब! छोटे-बड़े व्यसन हो न

कोई पीराई से भरा पीर हमारी पीड़ा हरता है, उसका पीड़ा हरना पहला लक्षण है, स्पर्श करके पीड़ा हरता है। दूसरा, पीराई से भरा कोई पीर मेरी और आप की पीड़ा को अपनी दृष्टि से टालता है। हमारी ओर देखता है। वह हमारा अवलोकन करता है स्पर्श से, दृष्टि से। तीसरी वस्तु है, पीराई से भरा पीर हमारी पीड़ा हरता है एक-दो बोल बोलकर। चौथा, पीराई से भरा कोई विहळानाथ, कोई कबीर, कोई नानक हमारे लिए विचार करता रहता है और हमारी पीड़ा चली जाती है! हरिस्मरण भूलकर हमारा स्मरण करता है कि उस लड़के का कैसे निभता होगा? पांचवां और अंतिम स्थूल माना जाएगा परंतु इस हद तक कि जब आश्रित मुश्किली में होता है तब वो किसी को पता न चले इस तरह सामने से अपने द्वार पर आकर खड़ा रहता है; उस दिन समझना कि पीड़ा गई।

साहब तो कम करके निकाल दीजिएगा। इस समाज को कितना-कितना नुकसान होता है व्यसन से!

मैं किसी से संकल्प नहीं करवाता, विनती जरूर कर रहा हूं। बाकी किसी को सुधारने का दावा मुझे नहीं करना है। हमें सब को स्वीकार करना है, जैसा हो वैसा स्वीकार करना है। व्यासपीठ का काम संस्कार देना भी नहीं है, स्वीकार करना है। संस्कार धर्मगुरु दें। वो उनका क्षेत्र है। और देना चाहिए। बाकी व्यासपीठ का काम संस्कार देना नहीं है, उसका मूल स्वभाव बताना है कि तेरा स्वभाव ये है। इसलिए मैं आप से संकल्प लिवाऊं कि ऐसा नहीं करूंगा, कोई हाथ उपर कराऊं कि आप छोड़ दीजिएगा नहीं मुझको आपसे अपील करनी है, विनती करनी है कि व्यसन कम हो तो बहुत अच्छा है। जैसा-तैसा न खायें। व्यसन से दूर रहकर, ऐसा करते करते ज़िंदगी बन जाएगी तो देश के साधुओं और सामाजिक व्यवस्था करनेवालें सभी विभाग बहुत खुश होंगे। और वे खुश हो या न हो अपना कुटुंब बहुत खुश होगा बाप! परिवार बहुत खुश होगा। इसलिए ऐसा कीजिएगा, यदि बात समझ में आये तो। और फ़र्क पड़ता है; नहीं पड़ता ऐसा नहीं है। व्यासपीठ बहुत सफल माध्यम है। केवल सहजता से आप सभी अपने श्रोताओं से मेरी प्रार्थना है कि थोड़ा व्यसन कम हो, थोड़ी अंधश्रद्धा कम हो जाये। विहळानाथ ने यह बहुत बड़ा काम किया है साहब! अंधश्रद्धा नाबूद की, अस्पृश्यता नाबूद की। दोरा-धागा को एक तरफ़ कर दिया। तो बाप! कुछ ऐसी धूप-दीपवाली आदत हो, संध्या-पूजा की आदत हो तो थोड़ी कम करना तो मुझे अच्छा लगेगा। और आपके कुटुंब को फ़ायदा होगा। एक साधु की करबद्ध प्रार्थना है, अपने राज्य को, अपने राष्ट्र को, अपने सुंदर विश्व को इस तरह से प्रेम और मोहब्बत से भरने के लिए अमुक दूषणों का हम स्वैच्छिक त्याग करें।

तो महादेव का व्यसन रामकथा है। और इसीसे मुनिबर ने रामकथा का गान किया। भगवान महादेव बहुत सुख से कथा सुने। दोनों पति-पत्नी कथा में बैठे हैं पर सुख मिला सुनते-सुनते, उसमें शिव का ही नाम लिखा तुलसी ने, उसमें सती का नाम नहीं लिखा। क्योंकि वे बैठी थी पर उन्होंने सुना नहीं। क्योंकि उन्होंने पहले से ही पूर्वग्रह बांध लिया कि ये क्या कथा कहेगा? इस मनोभाव के चलते सती कथा चूक गई और कथा का सुख खो दी। कभी-कभी मुझे ऐसा भी लगता है कि भगवान की कथा बहुत खुलेआम होती है, कोई प्रतिबंध नहीं होता फिर भी हम सुन नहीं सकते हैं उसका एक ही कारण है कि कहीं हमारी बौद्धिकता अवरोधक है या तो हमारा अहंकार रुकावट बना है या तो किसी जन्म का हमारा कर्म अड़चन पैदा करता है।

शिव और सती कथा सुनकर कैलास जाने के लिए पैदल विदा होते हैं। शिव ने जो कथा सुनी वो अगले अवतार की रामकथा अभी वर्तमान त्रेतायुग में रामकथा चल रही थी, लीला चल रही थी। दंडकवन में रावण सीता का अपहरण करके चला गया और राम तथा लक्ष्मण मानव लीला करते हुए रोते-रोते सीता की खोज करते हुए निकलते हैं, उस समय शिव और सती वहां से निकले। महादेव अंतर्यामी है। जान गए कि जिसकी कथा मैं कुंभज ऋषि से सुना वो मेरे हरि, मेरे इष्टदेव, मेरे प्रभु अभी लीला कर रहे हैं। शंकर भगवान ने 'हे सच्चिदानंद, हे जग पावन; दूर से प्रणाम किया। सती ने ये सब देखा। बुद्धिमान बाप की बेटी सती के मन में शंका हुई है। अंतर्यामी शिव जान गए कि सती को बीमारी लग गई है! और वहम बहुत बड़ी बीमारी है; बाप! जितना बच सके उतना वहम और संशय से बचना चाहिए। भगवान शंकर ने सती से कहा, देवी, आपका स्त्रीस्वभाव है। हृदय में संशय धारण मत करो। जिसकी कथा कुंभज ऋषि ने गाई है और जिसकी भक्ति मैंने कुंभज ऋषि से कही वो मेरे इष्टदेव भगवान राम है। बहुत समझाया सती को, पर सती को उपदेश काम न आया। इस पर व्यासपीठ ऐसा कहती रही है कि घर में पति-पत्नी के बीच कोई ऐसी बात घटित हो और पुरुष पति के रूप में पूरा प्रामाणिक प्रयत्न करके पत्नी से कहे कि तुम वहम और संशय छोड़ दो। और फिर भी वो यदि न मानें तो गुस्सा नहीं करना चाहिए। केवल हंसकर बात को निकाल दें कि कोई बात नहीं। शिव की बात सती न मानें तो हम तो शिव नहीं हैं। हम तो जीव हैं। युवा भाई-बहनों, आप लग्न करना। कभी संदेह हो तो समझाना पर वो न माने तो गुस्सा मत करना। हंसकर बात टाल देना। हल्के में उसे हकारात्मक ले लेना। शिव ने मुझे और आपको, जीव जगत को ये शिक्षण दिया है। और हमें एक बड़ा आश्वासन मिलता है इस 'रामायण' बने हुए प्रसंग से कि शिव की घरनी न मानती थी तो जीव की न माने इसमें प्रभु की जो इच्छा मानकर कार्य कर लें। ये गृहस्थाश्रम बड़ी से बड़ी तपस्थली है साहब! सहन कीजिए, पी जाइए। बाप! युवा भाई-बहनों, सती ने शिव का कहा न माना। हम जीव हैं। कभी कारण बिना की थोड़ी अवसमझी हो तो बात को हंसकर निकाल देना। और भगवान शंकर को विचार आया कि हे देवी, मेरे कहने से आप का संशय न जाता हो तो आप बुद्धि से उसकी परीक्षा करके निर्णय करते कि वो ब्रह्म है कि सामान्य जीव है? और सती बौद्धिक घमंड में राम की परीक्षा करने जाती है। शिव हरिनाम स्मरण करते हैं।

मानस-पीराई : ४

पीड़ा पैदा करे वो पीर

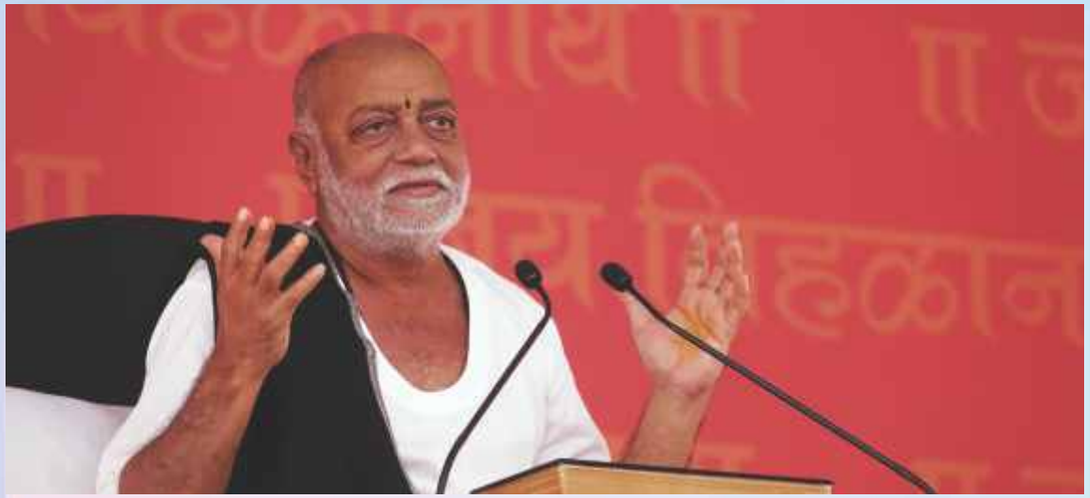

'मानस-पीराई' जो कथा का मूल विचार है। 'रामचरितमानस' के आधार पर अन्यान्य ग्रंथों से संदर्भ लेकर, साधु-संतों से सुना है उसे स्वीकार करके, चाहे जहां से भी शुभ मिला है उन सब की भिक्षा प्राप्त करके गुरु की कृपा से जो थोड़ा बहुत अनुभव हुआ है उसकी संवाद स्वरूप में आप के समक्ष बातें हो रही हैं। भगवान रघुनाथ का करुणामय स्वभाव कि जो दूसरे की पीड़ा को तुरंत जान जाते हैं। तुलसी कहते हैं, मनुष्य शरीर धारण करने के बाद जो दूसरे को पीड़ा देता है वो इस जगत का बहुत बड़ा संताप जानबुझकर सहन करता है। और इसीलिए जो दूसरे की पीड़ा हरता है उसका नाम पीराई है, पीर है। 'मानस' में अनेक बार अनेक अर्थों में 'पीर' शब्द का प्रयोग हुआ है। पीड़ा के रूप में, सिद्धि के रूप में, अनेक संदर्भों में लिया जा सकता है। वैसे तो एक बहुत ही बड़ी सूफ़ी धारा में से आया हुआ यह एक शब्दब्रह्म गिना जाएगा कि जिसमें औलिया, पीर, फ़कीर, सूफ़ी, उसी परंपरा में रणुजा से लेकर पाळियाद तक इस शब्द का प्रयोग हुआ, उसे हम विहळपीर कहते हैं। 'पीर' शब्द के अनेक अर्थ हुए हैं। बहुत ही विशाल शब्द है यह 'पीर।' इसका एक अर्थ संत भी होता है। इसका एक अर्थ साधु भी होता है। और ये सभी वर्णमुक्त अर्थ हैं। देश, भाषा, कोई संप्रदाय, कोई धर्म ऐसा कोई लेबल लगाये बिना इसका अर्थ स्वीकार करना चाहिए।

हम और आप विशेषणों से इतने अधिक घिर गए हैं अथवा तो समाज ने हमें इतने सब विशेषणों में घेर लिया है कि शुद्ध अर्थ को पाने के लिए हम भटकते हैं। बाकी सये सभी शब्द समानार्थी लगते हैं। विशेषण अर्थात् आभूषण। अपना आदर करते हैं। हम किसीको परम पूज्य कहे, प्रात:स्मरणीय कहे, जगतवंद्य कहे, ये हमारा आदर है। पर जिसके लिए ये शब्द प्रयुक्त होते हैं वे सब तो विशेषणों से मुक्त होते हैं। और इसीलिए हमारे उच्चारित शब्द सार्थक होते हैं। मुझको तो कभी-कभी ऐसा भी समझ में आता है गुरुकृपा से कि विशेषण की अपेक्षा विशेष क्षण महत्त्व की है। विशेषण की अपेक्षा जीवन में आई विशेष क्षण। जैसे गाने की क्षण मिली, सेवा करने की किसी को क्षण मिली। उसी तरह जिसने लम्हा को, इस पल को विशेष रूप से वर्तमान में पकड़ लिया उसे किसी विशेषण की जरूरत नहीं है। पीर यानी गुरु भी है। एक परंपरा में आश्रित अपने गुरु को पीर कहते हैं, मुर्शिद कहते हैं। हम गुरु कहते हैं, सद्गुरु कहते हैं, बुद्धपुरुष कहते हैं। तो सीधी-सादी व्याख्या तो ये है कि जो पर पीड़ा को जाने वो पीर। दूसरे की पीड़ा तोड़ने में कार्यरत हो उसका नाम पीर है। परंतु उल्टे सूत्र भी हैं कि जिसमें पीड़ा नहीं है उसमें पीड़ा उत्पन्न करे उसका नाम भी पीर है। यह एकदम उल्टी गंगा है। और इसे स्वीकार किए बिना पीराई समझ में नहीं आयेगी।

आज के सूत्र थोड़े उल्टे हैं। एक साधु खुद स्वयं में बैठा है। न तो मृगचर्म पर बैठा है; न तो व्याघ्रचर्म पर बैठा है। गुरुकृपा से मिली हुई गद्दी का वो निर्वाह कर रहा है। पर बैठा है वो खुद स्वयं में। निज मंदिर में बैठा है। उसके पास एक साधक आता है और साधु को प्रणाम करके पूछता है, हे भगवान, हे साधुपुरुष, पीराई से भरा हुआ

पीर किसे कहते हैं, यह मुझे बताइए। अब सभी पांचों के पांच सूत्र उल्टे हैं साहब! और साधक की पहले व्याख्या कर दूं। बहुत स्पष्ट व्याख्या है मेरे मन में साधक की। साधक अर्थात् अमुक प्रकार का वेश? बहुतों के वेश से हमें पता चलता है कि ये मनुष्य साधक लगता है। पर व्यासपीठ की सीधी-सादी व्याख्या है, साधक यानी जो किसी को किसी भी समय कभी भी किसी तरह से बाधक न बने उसका नाम साधक है। कभी किसी तरह किसी मारग से बाधक न बने, किसी को परेशान न करे वो साधक है। अथवा तो एक जैन ग्रूप में एक बार बोलने का अवसर मिला था और साधक के विषय में बात हुई तब ऐसा कहने का मन हुआ कि 'सा' का अर्थ सावधान रहना। 'ध' का अर्थ होता है धर्म और 'क' का अर्थ होता है कल्याण। 'सा' यानी सावधान, 'ध' यानी धर्म, और 'क' यानी कल्याण। अब उल्टा करके पढ़े। कल्याणकारी धर्म में जो सावधान रहता है उसका नाम साधक है।

धर्म कल्याणकारी होना चाहिए। जो मेरा निर्वाण करे; मुझे निर्वाण तक ले जाये। और दूसरे में दब चुकी वस्तु का निर्माण करे, उसे कल्याणकारी धर्म कहेंगे। कल्याणकारी धर्म में सावधान रहता है, उसका नाम साधक है। ऐसा कोई साधक बहुत बाहर भटक भटककर स्वयं के अंदर ही बैठा है। ऐसे साधु के पास आकर प्रणाम करता है। अथवा तो अपने पुरुषार्थ का भी होगा, अथवा तो हमने जो कोई प्रपंच हमें आता हो उसे करके हमने कुछ जमा लिया है, ऐसा भी हो सकता है। पर एक बात अवश्य मानिए कि साधु संगत अनायास ही नहीं मिलती। साक्षात् ईश्वर प्रगट हो तो भी मांगने जैसी वस्तु तो ये है। शायद मैं तो इस मत में हूं कि नहीं मांगना चाहिए। पर शायद ईश्वर प्रसन्न हो जाये तो ए मेरे गांव के रहनेवाले भाई-बहनों, कुछ मांगना मत, मांगना हो तो इतना मांगना कि हे परमात्मा, जिसे याद करके तेरी आंखों में आंसू आते हो ऐसे किसी साधु से भेंट करा दे। इसके सिवाय मुझे कुछ नहीं चाहिए। ऐसा श्रीमद् रामचंद्रजी ने मांगा था। गांधीजी जिसको गुरु मानते थे। कृपालु देव, कृपालु भगवान श्रीमद् राजचंद्र। उन्होंने कहा, हे पुराणपुरुष, तुझे मुझको कुछ देना है तो किसी बुद्धपुरुष का संग करा दे। और साहब, 'साधु' शब्द बोले न तो भी पवित्रता आने लगती है। ऐसा अत्यंत पवित्र शब्द है 'साधु।' तो साधु की महिमा अत्यंत विशाल है। सब ने साधुसंग की महिमा गायी है। और मुझको लगता रहता है कि ऐसा कोई साधु मिले तो उसके आगे बहुत बोलबोल नहीं करना चाहिए। केवल बैठ जाना ही पर्याप्त है। ऐसे खुद में बैठे हुए महापुरुष से एक साधक पूछता है, मुझे बताइए, पीराई से भरपूर पीर किसे कहते हैं? हम नहीं पहचान सकते हैं साधुपुरुष। इसलिए कोई इशारा कीजिए, कोई संकेत कीजिए।

मुझे गतकल किसी ने चिठ्ठी लिखी कि आप इस पीठ को व्यासपीठ क्यों कहते हैं? आपको तुलसीपीठ कहना चाहिए। व्यासपीठ का नाम बदला नहीं जा सकता! व्यासपीठ यानी व्यासपीठ ही रहेगी साहब! ऐसे नए नाम खड़े करने की जरूरत नहीं है। व्यासपीठ अमर है। बहुतों ने पीठों के नाम खड़े किए हैं! परंतु सार्वभौम पीठ, आदि-अनादि पीठ तो व्यासपीठ ही है साहब! 'नमोस्तुते व्यास विशाल बुद्धे।' व्यासपीठ कितना गौरवयुक्त नाम है! बहुत से लोग ऐसा कहते हैं कि 'रामायण' बोलते हैं, उसे तुलसीपीठ कहना चाहिए! किसी भी शास्त्र की आप कथा करें साहब, हां, आप उपनाम दीजिए उसकी रोक नहीं, बाकी नाम बदलने से कुछ होता नहीं है साहब! कोई भी शास्त्र प्रारंभ करें। व्यासपीठ व्यासपीठ है। मेरा तुलसी भी कितने आदर के साथ पग लागकर व्यास का नाम लेता है!

व्यास आदि कबि पुंगव नाना।
जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना।

व्यास, आदि कवि वाल्मीकि ये सब कवि पुंगव हैं, जिसने जिसमें भगवान के चरित्र का गान किया है। उन सभी को मैं प्रणाम करता हूं। व्यासपीठ की मर्यादा और विवेक देखिए! उच्छलता ने नाभि को स्पर्श किया है पर कहीं से मर्यादा को आंच नहीं आने देते। पीठों का नाम बदलने की जरूरत नहीं है साहब! और राम कहे तो इसमें दोनों आ जाते हैं। 'रा' यानी 'रामायण' और 'म' यानी 'महाभारत'; इस राम में 'रामायण' और 'महाभारत' दोनों समा गए हैं। इससे बाहर है ही नहीं। कृष्ण और कर्ण दोनों के जन्म में बहुत साम्य लगता है। कृष्ण जन्मे तब अंधेरा था। और कर्ण जन्मे तब अंधेरा था। संदूक में रखा एक को और एक को वसुदेव ने टोकरी में रखा। वहां उजाला होने लगा साहब! यहां भी उजाला और इधर भी मार्ग मिलने लगा था। मनोज खंडेरिया कहते हैं-

टोपलीमां तेज लई नीकळी पड़ो,
पाणीनी वच्चेथी रस्ता थई जशे।

पीड़ा हरे वो पीर। पर साधक के प्रश्न में साधु कहता है, पहला सूत्र, पीड़ा पैदा करे वो पीर। अब सभी उल्टे सूत्र हैं। दो दिन-तीन दिन से पीड़ा हरे वो पीर, ऐसी चर्चा चल रही है। किसी न किसी तरह से पीड़ा हरे स्पर्श से, वाणी से, दृष्टि से, चिंतन से या साक्षात् आकर खड़ा हो

जाए। वो हमारी पीड़ा हरता है। इन सूत्रों की चर्चा हमनें की। अब साधु पुरुष कहता है कि पीड़ा खड़ी करे वो पीर। किसे सद्गुरु कहेंगे? किसको पीर-पयगंबर कहेंगे? जो पीड़ा प्रगटित करे। कौन-सी पीड़ा? मुझमें और आपमें परमात्मा के विरह की पीड़ा प्रगटित करे उसका नाम पीर है। जिसने जिसने भजन किया, जिसने जिसने भक्ति की, उसने इस पीड़ा को अखंड सजोए रखा है। सामान्य पीड़ाओं को हरता है और एक महाविरह, एक महापीड़ा परमतत्त्व के वियोग की ऐसी उत्पन्न करता है उसका नाम पीर है। मैं, आप, हम सब सामान्य जीव है। हम भी किसी ऐसे गुरु के चरण में जाएं कि जो हमें एकदम पीड़ामुक्त न करे। प्रेम की पीड़ा तो होनी ही चाहिए। एक विरह वेदना जगे। कभी-कभी अभिमान ये पीड़ा पैदा होने नहीं देता है। कभी मानव को बल का गर्व, कभी रूप का गर्व! सद्गुरु वो है जो हम में प्रेम की पीड़ा प्रगट करे। निज़ामुद्दीन ने क्या किया? अमीर खुसरो में पीड़ा प्रगट की। तो आज की कथा का पहला सूत्र, पीराई के लिए पीड़ा प्रगटित करे, उसके बिना नहीं अच्छा न लगे। कुछ ऐसी सुरता लगा दे और फिर सुरता में भंग पड़े किसी दिन किसी कारण से और जो पीड़ा और विह्वलता का अनुभव हो। मुझे लगता है कि भगवत्प्राप्ति में अथवा तो परम की खोज में जो अधिक विह्वल हुआ होगा वही विहळ होना चाहिए। विह्वल बने बिना विहळ नहीं हुआ जा सकता है। एक विह्वळता, एक तीव्रता, एक अधीरता।

मुझे अपने धर्मस्थान के एक पूजनीय ने ये प्रश्न भेजा है कि 'बापू, किसी स्थान पर गुरुकृपा से गुरुपरंपरा का निर्वाह करने के लिए बैठना हो तब क्या करना चाहिए?' इसका जवाब नहीं दे सकता। यह तो प्राप्त सत्संग के विवेक में से ले लेना चाहिए। पर मैं इतना जरूर कहूंगा; पूछा है इसलिए कहता हूं, पग लागकर कहूंगा कि मूल पुरुष को साधना अधिक करनी चाहिए। शेष सभी प्रवृत्तियां सेवकों को सौंप देनी चाहिए। मार्गदर्शन देना चाहिए। भूल करे वहां रोकना चाहिए। सेवक काम करें। क्योंकि सेवक भी मिल जाते हैं। मिल जाते हैं! जब हम एक ऐसे विशुद्ध भाव से, अपनी परंपरा को रोशन करने लगते हैं तब कहीं से भी लोग दौड़े आते हैं हमारे पास। ये सभी परंपरा, जहां-जहां अपने स्थान हैं, जो-जो महापुरुष आज सेवा के क्षेत्र में पड़े हैं असंगभाव से, अपनी साधना को बरकरार रख के कि कहीं हमारी प्रेम की पीड़ा चली न जाए। साधु को भजन की नुकसानी में कोई भी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए, ऐसा मेरा व्यक्तिगत सूत्र वर्षों से रहा है। मूल पुरुष को साधना बढ़ानी चाहिए। सेवकों को काम में लगाना चाहिए। भागना नहीं चाहिए। महत्त्वपूर्ण प्रसंग पर खड़ा रहना चाहिए, मार्गदर्शन देना चाहिए असंगभाव से। जितना भजन बढ़ेगा उतना इस जगत का अधिक कल्याण होगा। भजन साधु को करना पड़ेगा, दुनिया नहीं कर सकती। दुनिया इसमें भटक गई है। धक्के खा रही है दुनिया! उस दिन फ़र्ज़ बनता है साधु-संतों का कि यह जगत पीड़ा भूल गया है। ये जगत आंसू चुक गया है। जो पीड़ा प्रगट करे प्रेम की वो पीर है।

दूसरा सूत्र यह है कि परमार्थ करता है। पर परमार्थ जो साधु करता है उसे परमार्थ के अहंकार की खुशी होने लगती है। हम सब उसमें आते हैं कि हमने इतना सत्कर्म किया है इसका हमें आनंद होता है। और होना चाहिए। भगवान ने हमें निमित्त बनाया। ये सब अच्छे शब्द हैं पर हम सब जीव हैं न साहब! कभी गंगाजल में शराब बना डालते हैं! इसलिए हमें अच्छा लगता है कि हमारे जैसा कोई नहीं कर सकता! तब अपना पीर हमारे परमार्थ में आये सुख को नष्ट करने का काम करता है कि ये सुख लिया तो वो सुख चला जाएगा। यदि इस सुख का स्वाद आने लगेगा तो जो परम सुख है वो चुक जाओगे। अर्थात् उल्टा चलता है पीर। अपना सुख कोई हर ले तो हमें पीड़ा नहीं होगी? हम गाढ़ी निद्रा में सो रहे हो और कोई हमें जगाने आये तो हमें अच्छा नहीं लगता है। ऐसा कहते हैं कि हम किसीको जगाते हैं तो सब को लगता है कि ये कहां से आ गया? जगानेवाला पसंद नहीं आता मनुष्य को। क्योंकि नींद का एक सुख होता है; मूर्छा का एक सुख होता है; बेहोशी का एक सुख होता है। उसमें कोई विघ्न डालें यानी हमें पीड़ा शुरू होती है। बुद्धपुरुष तो ऐसा करते हैं कि ये पीड़ा भले खड़ी हो पर सत्कर्म करना है, उसको सुख की चाहत करना ही नहीं चाहिए। सुख बांट देना चाहिए। उसका स्वाद लेना ही नहीं चाहिए। पर कोई पीर मिल जाएगा तो आपको और मुझको ये उलपबाजी समझाएगा। और हमें पीराई का अधिक से अधिक अनुभव होता जाएगा।

तीसरा, कुपथ से हाथ पकड़कर बाहर निकालता है उसका नाम पीर है। हमारे अवगुणों की निंदा न करके हमारे अवगुणों के नीचे दबे हुए हमारे सात्त्विक गुणों को प्रगट करता है। हम खराब रास्ते जाते हैं न! न पीने जैसा पीते हैं न! न खाने जैसा खाते हैं न! बहुत से लोग पाप को भी ऐसे अलग ढ़ंग से लगाने लगे हैं इस समाज में! जो भ्रान्ति का सुख पैदा होता है उसे, उसमें से बाहर निकालता है वो पीर है। ऐसा होता है तब अमुक शिष्य नाराज भी

होते हैं। आश्रितों में दो बातें हैं। या तो उनका काम होता ही नहीं इसलिए चले जाते हैं। यह मैंने लगभग आश्रितों में ऐसा देखा है। उसका काम हो जाये तो चला जाता है कि अपना काम हो गया! 'भले बापू, जय सीयाराम!' और या तो ऐसा होता है कि आठ वर्ष से इनके पीछे दौड़ते थे और काम तो हुआ नहीं! इसलिए 'नमो नारायण!' वो हट जाता है क्योंकि उसे अमुक वस्तु न अनुकूल हुई! साधु तो सुख तोड़ता है, सपना तोड़ता है, हमें पसंद संगों से हम को दूर ले जाता है। वो हमें पसंद नहीं, हमें अनुकूल नहीं होता। इस तरह हमें पसंद न हो ऐसा भी हमारे कल्याण के लिए करके हमारे सपने तोड़े उसका नाम पीराई से भरा कोई पीर है। हम तो काम पूरा न हुआ हो तो भी निकल जाते हैं, हो जाये तो भी निकल जाते हैं!

व्यासपीठ के पास आप आते हैं इसलिए सब समझते हैं आप लोग। बहुत से लोग ऐसा मानते हैं कि बापू की हम ऐसे कितनी सेवा करें! बहुत से करते हैं सेवा। कोई ये सेवा करता है, कोई ओर सेवा करता है। भगवान की कृपा से कुछ करना नहीं पड़ता है। पर मैं बहुत साफ़ कहता हूं कि वे कोई मेरी सेवा करने नहीं आते; उनकी टंकी खाली हो गई है उसमें पेट्रोल भरने के लिए आते हैं। कोई गाड़ी लेकर सेवा करता है, कोई कुछ लेकर सेवा करता है। वे अपनी खाली हुई टंकी भरने आते हैं। और साधु-संत वो तो एक ऐसे अखंड पेट्रोल पंप हैं, वहीं से भरोगे। अन्य कहीं से नहीं परिपूर्ण होगे। वो वाहन लेकर आते हैं। वो सब अपने को भरने ही आते हैं। ऐसा जब कहते हैं तो सपना तोड़ने की बात है। पीर वो है जो ऐसी पीड़ा उत्पन्न करे। कुसंग में से निकलना अच्छा नहीं लगता तो भी हमें उसमें से छुड़ाता है, अच्छा न लगे तो भी वापस कर देता है। हमें पीड़ा होगी पर यह पीड़ा उत्पन्न करे वो पीर है।

मैं तो बहुत प्रेम से आपके साथ बातें कर रहा हूं परंतु अपने समाज में जो न पीने का ये सब आ गया है, न खाने का सब आ गया है! उसमें से धीरे-धीरे निकलना बाप! आपको शायद अच्छा न लगे पर थोड़ा निकलना बाहर। उसमें से बाहर निकलना चाहिए। खबर नहीं, ये क्या हो गया है दुनिया को! मुझको तो खूब आश्चर्य होता है! इतने वर्षों से घूम रहा हूं, मुझे लगता है कि यह आदमी भी पीता होगा? यह आदमी भी खाता होगा? ये सब निकलता है तब मुझे बहुत आश्चर्य होता है। बहुत बड़े-बड़े आदमी है, साहब! मेरा काम तो स्वीकारना ही है इसलिए मेरे लिए तो कुछ भी नहीं है। यहां इतना विशाल समाज है इसलिए कहता हूं। ऐसे व्यक्ति परिवार में या अमुक समाज में या अमुक ग्रूप में हो तो थोड़ा-थोड़ा बंद करेंगे तो शरीर ठीक रहेगा। अधिकतर लोग नहीं कहते हैं कि मुझे दूसरी कोई बीमारी नहीं है पर अंतड़ी एकदम जल गई है। पर जल ही जाएगी! तूने गंगाजल पिया था? जले नहीं तो करे क्या करे अंतड़ी?

चौथा सूत्र पीड़ा खड़ा करने की। हम साधक हो, मान लीजिए, हम साधक हैं और किसी खुद में बैठे साधु के पास जाकर हम पीर की व्याख्या पूछे तब जहां-जहां हमारा सम्मान होता है साधक के रूप में, उसके विरूद्ध में वो साधुपुरुष निर्णय देने लगे कि तुझे ये सम्मान लेने की जरूरत न थी, तू ये रहने दे, तुझे इसमें पड़ना नहीं है। ये लोकमान्यता अग्नि जैसी है; तुम्हारे तप को जला देगी। तब अपने में पीड़ा उत्पन्न करते हैं कि मेरा सम्मान हो, मुझे अेवोर्ड मिले, मुझे खिताब मिले और उसमें मेरा ये पीर क्यों रोड़ा बनता है? परंतु पीर को बहुत दूर का दिखाई देता है। हम सब शोर्ट कट मागते हैं। पगदंड़ीवाले बहुत निकले हैं! अमुक को तो मैं पथ कहता ही नहीं, राजमार्ग कैसे कहूं? पगदंड़ी है! और पगदंड़ी भी दूसरे के खेत से निकाल देते हैं। सनातन धर्म में पगदंडी पाड़ दी है। हां साहब! जो मूल धारा थी उसमें पैड़ा कर दिया! किसी के खेत में पैड़ा बना दिया! गंगासती पीर हैं। इसलिए कहती हैं कि हे पानबाई, मान को छोड़कर तुम मैदान में आओ तो मैं तुम से सद्गुरु की समझ दूं। पर साधक को सावधान रहना चाहिए। कल्याणकारी धर्म में सावधान रहे उसका नाम साधक। बस, मान छुड़ा देता है। थोड़े समय अच्छा नहीं लगता लेकिन मेरा मान होनेवाला था और नहीं होने दिया! मेरा गुरु ही रोड़ा बना लो! मैंने इतनी इनकी सेवा की; उनका मकान बनवा दिया; ए.सी. फिट करा दिया और गुरु ही अड़चन बना! तब वो पीड़ा खड़ी करता है पर बहुत दूर तक देखकर के उसका नाम पीर है।

साधक के सवाल का पांचवां जवाब एक स्वयं में बैठा साधुपुरुष देता है। माल छोड़ना अच्छा नहीं लगता मुझको और आपको। सहज बात है, माल छोड़ना पसंद नहीं है। और माल छूट जाए कि तेरा धंधा न चले! तेरी फेक्टरी बंद हो जाए! मेरे पास तो बहुत उद्घाटन के लिए आते हैं और मैं मना करता हूं पर लोग मानते नहीं! बहुत दिल से कहता हूं कि मुझ से करायेगा तो धंधा नहीं चलेगा! इसलिए तू बिना कारण खतरा मोल न ले! हम से बंद होगा उल्टे का! अब अपना धंधा बंद हो जाए यह किसको ठीक लगेगा? ये तो उल्टा होगा! माल छोड़ना पड़ेगा, ये किसको पसंद होगा? इसीसे पीड़ा होती है। पर माल छुड़वाकर माला पकड़ा दे उसका नाम पीर है। साहब! बड़ी से बड़ी संपदा है हरिनाम, हरिभजन। तो एक साधक के पीराई के

विषय में पूछे प्रश्नों का उत्तर सीधी-सादी बातों में हमें मिलता है।

तो 'मानस-पीराई' को केन्द्र में रखकर आप के साथ बातें की। कथा का थोड़ा क्रम। सती ने शिव का कहा नहीं माना। और सती भगवान की परीक्षा करने गई। बहुत मनोमंथन के बाद सती ने सीता का रूप धारण किया। सती सीता का रूप लेकर राम जिस दिशा में जा रहे थे वहां ऐसे सामने से आई। भगवान ऐसे आते हैं। और रामजी ने देखा तो जगदंबा सती सीता के रूप में दिख रही थी! भगवान राम कहते हैं, मैं दशरथ का पुत्र आपको प्रणाम करता हूं। आप महादेव की पत्नी सती जगदंबा हैं, माता हैं, मेरे पिता महादेव कहां हैं? आप अकेले-अकेले क्यों घूम रही हैं? इस तरह जब राम ने पूछा तब सती समझ गई कि मैं पकड़ी गई!

महादेव ने पूछा, देवी, आप कुशल तो हैं न? प्रभु की परीक्षा करने गई थी, निश्चित हो गया कि वो ब्रह्म है या फिर भी कोई भ्रम है? सती झूठ बोली, कहती हैं कि कोई परीक्षा नहीं ली। कवि कागबापू ऐसा कहते थे कि एक भूल को छिपाने के लिए आदमी कितनी-कितनी भूलें करता हैं! कुंभज ऋषि ने स्वागत किया। साधु की सरलता का गलत अर्थ किया, पहली भूल। सती की दूसरी भूल, परम सुखदायिनी रामकथा में बैठी पर श्रवण नहीं की। अपने पति ने रामदर्शन किया, प्रणाम किया। सती को अनुमामिनी की तरह उन्हें प्रणाम करना चाहिए था, नहीं किया। ये तीसरी भूल। सती की चौथी भूल राम की परीक्षा करने गई। शिव की बात नहीं मानी। सती की पांचवीं भूल सीता का रूप लेकर गई। सती की छठ्ठी भूल, छिपाया। अब फिर भूल कर रही हैं कि मैंने कोई परीक्षा नहीं ली!

आंखें बंद करके और ध्यान में देखा तो सती ने जो कुछ किया था वो सब दिखा। आंतर्बाह्य शुद्ध तत्त्वों के समक्ष भूल से भी झूठ नहीं बोलना चाहिए। नहीं तो वो जान जाएगा। उलाहता नहीं देगा पर उसकी ममता कम हो जाएगी। समता तो हमेशा रखेगा किंतु ममता कम हो जाएगी। और कोई बुद्धपुरुष की अपने उपर की ममता कम हो, उसके जैसा घाटे का धंधा दूसरा कोई नहीं है साहब! जनम-जनम के जो उञ्वल मनुष्य हैं न उनके समक्ष किसी दिन कपट नहीं करना चाहिए बाप! कुछ कह नहीं सकते तो चुप रहना चाहिए। या तो कह देना चाहिए। वो कहीं आपका प्रचार नहीं करेगा। पर प्रतीत न होने दिया मेरे महादेव ने! हंसे पर मन में। बुद्धपुरुष को पीड़ा हुई कि सीता तो मेरी माँ हैं और सती ने सीता का रूप धारण किया तो अब सीतारूपी सती के साथ मुझे कौन-सा संबंध रखना चाहिए? अब यदि सती के साथ मेरा गृहस्थजीवन का संबंध रखूंगा तो भक्ति का मार्ग नष्ट हो जाएगा और अनीति होगी। स्वयं निर्णय नहीं करते। स्वयं निर्णय कर सकते थे। शिव का संकल्प शिव का संकल्प ही है पर जीवों को बताने के लिए कि आपके मन में ऐसी धमासान उत्पन्न हो कि ये करूं कि न करूं, इसे स्वीकार करूं या न स्वीकार करूं, उस समय अंदर से आवाज़ आई कि महाराज, आप जो विचार कर रहे हैं वो उचित है। खबर न पड़े इस तरह से आप सती का यह जन्म है तब आप भक्ति के मार्ग को अखंड रखने के लिए थोड़े अलग हो जाएं। थोड़े असंग हो जाएं। और ये विश्वकल्याण का संकल्प शिव ने स्वीकार किया। तुरंत आकाशवाणी हुई, धन्य हैं शिव, धन्य हो।

विश्वनाथ कैलास पहुंचे। भगवान महादेव भवन में नहीं गए। दूर बैठ गए भवन के बाहर। भगवान शंकर ने स्वरूपानुसंधान किया। शिवजी की स्वाभाविक और अखंड समाधि लगी है। सती उपाधि में, शिव समाधि में। वहम उपाधि पैदा करता है, विश्वास समाधि पैदा करता है। सत्तासी हजार वर्ष बीत गए। अंत में जब भगवान समाधि से बाहर आये तब उनके मुख से 'राम राम राम' परम का नाम निकला। सती ने सुना और सती को लगा, जगपति जागे हैं। सती आकर प्रणाम करती हैं। कई बार जीवन में आनेवाले दु:ख हमें ईश्वर के सन्मुख कर देते हैं। ऐसे दु:खों का स्वागत करना चाहिए। कई बार हमारे सुख हमें ईश्वर से विमुख कर देते हैं। व्यासपीठ का वाक्य पुन: याद रखियेगा कि आज के सुख हमें बहुत महंगे पड़े हैं जिसने भजन भुलवा दिया है। आज की व्यवस्थाएं बहुत महंगी पड़ी हैं। और जब-जब सुख का अतिरेक होता है तब ईश्वर से विमुख हो जाते हैं। कोई-कोई बच जाता है ये बात अलग है। पर दु:ख

पीड़ा पैदा करे उसका नाम पीर। किसी न किसी तरह पीड़ा हरे स्पर्श से, वाणी से, दृष्टि से, चिंतन से या साक्षात् आकर खड़ा रहता है। वो अपनी पीड़ा हरता है। अब साधुपुरुष कहता है, पीड़ा पैदा करे उसका नाम पीर। किसको सद्गुरु कहेंगे? किसको पीर-पयगंबर कहेंगे? जो पीड़ा प्रगटित करे। कौन-सी पीड़ा? मुझमें और आपमें परमात्मा के विरह की पीड़ा प्रगटित करे उसका नाम पीर है। जिसने-जिसने भजन किया, जिसने-जिसने भक्ति की उसने इस पीड़ा को अखंड संजोये रखा है। सामान्य पीड़ाओं को हरे और एक महाविरह, एक महा पीड़ा परमतत्त्व के वियोग की ऐसी पैदा करे उसका नाम पीर है।

जीव को सम्मुख करता है। इसलिए कभी दु:ख आयेगा। जिन्हें भजन करना है उन्हें दु:ख अधिक आयेंगे।

तो मुझको और आपको हरि के सन्मुख करे वो सभी वस्तु उत्तम है। दु:ख करे तो दु:ख, सुख सन्मुख करे तो सुख। इसकी कोई उपेक्षा नहीं है। वैभव भी विश्वनाथ से अलग न कराये तो वैभव मंजूर है। और सती आई। प्रणाम किया। दु:ख इन्सान को विनम्र बना देता है। बुद्धिमत्ता के कारण विमुख हुई थी उसे शिव ने सन्मुख बैठाया।

यहां सती के समक्ष भगवान रसाल कथा कहते हैं। उसी समय देवताओं को आमंत्रण है वो देवता सभी अपने-अपने विमानों को लेकर निकले। शिव तो कथा में मग्न थे पर सती का ध्यान विमान पर गया। ये सब कहां जा रहे हैं? शिवजी ने कहा, देवी, आप के पिता के यहां प्रसंग है। यज्ञ कर रहे हैं। इन सब को आमंत्रण दिए हैं पर मुझे, ब्रह्मा को और विष्णु को नहीं दिए। आप हमारी पत्नी है इसलिए आपको भी आमंत्रण नहीं दिया है। सती ने जीद्द की, मेरे पिता के यहां प्रसंग है, आप न आये तो आप की मर्जी पर मुझको तो जाने दे। शिव ने समझाया। नहीं मानी। पिता के घर कोई सती का सत्कार नहीं करता है। एक माता प्रेम से मिली। माँ माँ है। प्रेम से माँ मिली। थोड़ी शांति हुई पर सती को लगा, मैं यहां आई यह ठीक नहीं किया! यज्ञमंडप में जाकर वहां खड़ी रहती हैं देवी! और दुर्गा चंड़ी यज्ञ के समीप आकर कहती हैं, हे सभासदों, हे मुनिओं, जिन्होंने शिव की निंदा की, जिन्होंने सुनी और जो चुप रहे उन सब को योग्य फल मिलेगा! योगाग्नि में सती ने शरीर को जला दिया। योगाग्नि में जलने वक्त सती ने प्रभु से मांगा है, जनम-जनम मुझे शिव के चरण में अनुराग हो; मेरा भवभव का भर्तार मेरा शिव ही प्राप्त हो।

सती का दूसरा जन्म हिमालय के यहां, पर्वत के यहां, पर्वतराज के यहां पार्वतीरूप में हुआ है। जैसे ही पुत्री ने जन्म लिया, हिमालय में उत्सव शुरू हुआ। साधु-संत हिमालय आने लगे और समृद्धि बढ़ने लगी। अपने समाज को मैं इतना ही कहकर आगे बढ़ूंगा, पुत्री का जन्म हो तब पुत्र के जन्म की अपेक्षा अधिक उत्सव मनाना। क्योंकि पुत्री ये पार्वतीरूपा है, लक्ष्मीरूपा है, सरस्वतीरूपा है। बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया। एक पुत्री किसी के घर जन्म लेती है तब 'गीता' की सात-सात विभूतियां एक साथ प्रगट होती हैं। बहुत बड़ा उत्सव हिमालय ने किया। और उसी परंपरा में एक दिन नारदजी पधारें। हिमालय ने नारद की पूजा करके बैठाया। पुत्री को चरणस्पर्श कराया, बापजी, मेरी पुत्री का नामकरण कीजिए और फिर इसका भविष्य बताइए। नारदजी ने नामकरण करते हुए कहा, हिमालय, तुम्हारी पुत्री का एक नाम है पर मैं दो-तीन नाम कहता हूं। उमा, अंबिका, भवानी। उमा कन्यापरक नाम है। अंबिका पत्नीपरक नाम हैं और भवानी मातृपरक नाम हैं। तीन नाम रखे हैं। फिर कहा, तुम्हारी पुत्री के हाथ में रेखा ऐसी हैं कि इसको पति ऐसा मिलेगा-

अनुग अमान मातुपितु हिना।

ऐसा पति इसे मिलेगा जिसमें गुण नहीं होगा; बिलकुल गुणरहित। अमान, बिलकुल मान नहीं, सन्मान नहीं। उसके माँ-बाप ही नहीं होगे। एकदम उदासीन होगा। न अच्छा, न खराब; न स्वीकार, न तिरस्कार; न मान, न अपमान; न सुख, न दु:ख। उदासीन रहता होगा। सभी संशय जिसके समाप्त हो गए होंगे। आगे कहे, जोगी, बड़ा योगी होगा। वो तुम्हारी पुत्री को जतिरूप में मिलेगा। जटिल, बहुत लम्बी जटा रखता होगा। ऐसा मनुष्य पतिस्वरूप में मिलेगा। अकाम, जिसके मन में निष्कामना होगी, ऐसा पुरुष तुम्हारी पुत्री को पतिरूप में मिलेगा। नग्न रहता होगा, अमंगल वेश होगा। हाथ की रेखाएं तो ऐसा कहती हैं कि ऐसा पति तुम्हारी पुत्री को मिलेगा। माँ-बाप रोने लगे कि महाराज, इतनी सुंदर कन्या, इतनी बड़ी उम्र में हमें मिली और ऐसा पति? तो बोले, विधिलेख जो लिखा है उसे कोई मिटा नहीं सकता, हिमालय। पर यदि महादेव मिल जायें तो मिट जाएगा। यदि पुत्री को शिव जैसा पति मिलेगा तो दूषण भूषण बन जाएगा, डंका बज जाएगा; धन्य हो जाएगा। आशीर्वाद देकर नारदजी चले गये। माता-पिता एकांत में मिलकर विचार करते हैं कि पुत्री को तप करने के लिए कैसे कहा जाएगा? और धन्य है यह देश, यहां पुत्रियों ने व्रत किया, तप किया। पार्वती तप के लिए तैयार हुई। भवानी ने सामने से ही कहा, माँ, आज मुझे सपना आया उसमें एक सुंदर गौर विप्र मिला और तुझे शिव को प्राप्त करना हो तो बेटी, तू तप करने जा, ऐसा मुझे ब्राह्मणदेवता ने कहा। माँ, मैं तप करने जाऊं? तप की महिमा गाई गई। फिर सती शिव के लिए तप करती हैं। अद्‌भुत शिवचरित्र है। अब शिव और पार्वती का लग्न कल होगा और फिर शिव भवानी को कथा कहेंगे। इस वक्तव्य में कल राम का जन्म भी होगा। कल वसंत पंचमी का दिवस है। २४८वीं जन्मजयंती विहळानाथ की वो भी कल प्रागट्य दिवस है। इसलिए शंकर और पार्वती के विवाह का उत्सव, रामप्रागट्य का उत्सव और विहळानाथ प्रागट्य उत्सव; इसकी कथा कल आगे बढ़ायेंगे।

आंखें बंद करना ये विश्वास है, आंखें खोलना ये विचार है

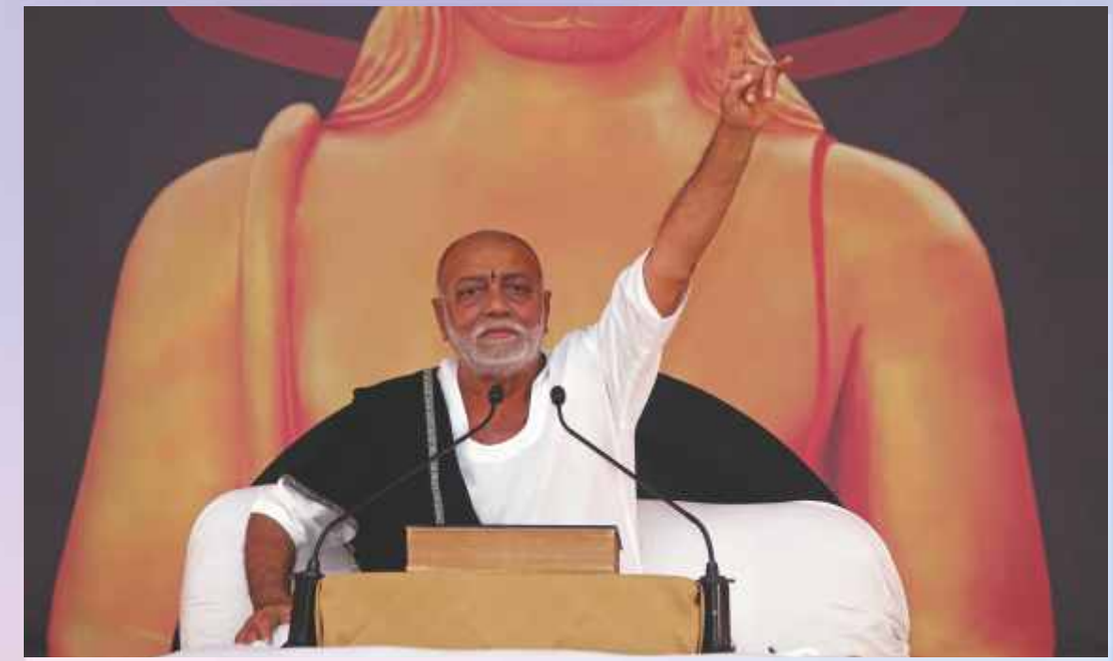

बाप! विहळानाथ ठाकर की इस पावन भूमि पर नव दिवसीय रामकथा के आज के दिन की कथा के आरंभ में पुन: एक बार इस भूमि को प्रणाम और विहळ से लेकर निर्मल तक की पावन परंपरा को प्रणाम। कथा में उपस्थित सभी संतों, महंतगण, विविध क्षेत्र के महानुभावों, कला-विद्याक्षेत्र के उपासकों, यजमान परिवार, आप श्रोता भाई-बहनों, व्यासपीठ से मेरा प्रणाम। आज बापू का प्रागट्य दिवस है, विसामण बापू का, वसंत पंचमी; इसकी खूबखूब बधाई आप सभी को, बधाई हो, बधाई हो। वसंतपंचमी की भी बहुत बधाई। जिसको सूर, शब्द और स्वर की साधना करनी हो उसके लिए आज का दिन साधना पद्धति में महत्त्वपूर्ण गिना जाता है वसंतपंचमी। आज सूर, शब्द और साधक हमेशा सरस्वती की पूजा करते हैं। आज का दिन किसी पीर को अपने आप को समर्पित करने का दिन है। फिर एक बार विहळानाथ के प्रागट्य दिन पर सभी को बधाई देकर पूरी परंपरा को, माँ निर्मला माँ आप को खूब-खूब बधाई आज के दिवस की। और भईलुभाई तो वैसे सुबह से साथ में होते हैं। रोज सुबह परोसने आते हैं। पर बोले नहीं। आज उन्हें भी बधाई। उनकी अेनीवर्सरी है। खुश रहे बाप! खुश रहे। इस वजनदार, गहरी और लोकोपकारी परंपरा का आप द्वारा जतन हो ऐसी अपने हनुमान से प्रार्थना करता हूं। क्योंकि मेरे लिए तो मेरा पीर हनुमान है। सब का पीर, अपना अपना पीर। और अंत में तो सब एक ही है। रामकथा की दो पंक्तियों द्वारा 'मानस-पीराई' का जो दर्शन मैं और आप संवाद रूप में कर रहे हैं उसमें थोड़े आगे बढ़ें।

आज एक भाई ने कहा कि मेरा नाम बबलूबापू है। नाम है बबलूबापू। मुझको तो नाम ही बहुत पसंद आया पहले तो! मेरा नाम बबलूबापू है और मैं रीक्षा चलाता हूं विहळानाथ की कथा में। जिसको कथा में आना होता है उसका पैसा नहीं लेता। सब को यहां ले आता हूं। जो अपंग है, वृद्ध है, सब को यहां लाता हूं, पैसा किसी से नहीं लेता। केवल कथा हो तब ही नहीं, कभी मेरी जरूरत हो तो मैं अपनी रीक्षा का इस तरह ही उपयोग करता हूं। कथा सुनना अर्थात् मोरारिबापू बोले और आप सुनो यह तो है पर कथा अनेक तरह से सुनाई देती है। केवल मंडप में तो कभी-कभी सुनाई भी नहीं देती और अपने को पता न हो ऐसे बबलूबापू कथा सुन जाते हैं! वे कहते हैं, बापू, मुझे सुनने का कोई समय ही नहीं मिलता! ओ बबलूबापू, तुम्हें कथा सुनने की जरूरत नहीं है। रीक्षा ही तुम्हारी कथा है।

वो कथा है। ये युवा जो आ रहे हैं ये बहुत बड़ा शुकन है साहब! सभी युवा ही हैं जहां देखे वहां! बहुत बड़ी निशानी है। कथा द्वारा एक बहुत बड़ा शुकन लगता है साहब!

रामनाम आता है न तो गांव के किसानों को भी बोध आ जाता है। उन्हें शास्त्र पढ़ना नहीं पड़ता साहब! राम आया यानी बोध आया बस। बोध आ गया अर्थात् आदमी निर्मोह हो गया। भूली हुई स्मृति याद आती है तब बोध आता है। ऐसा होता है। जब इन्सान को बोध जाता है तब उसकी स्मृति आती है। तो एक बुद्धिमतां वरिष्ठ को एक बुद्धि कनिष्ठ पूछता है, पीराई से भरे हुए पीर के लक्षण कौन से हैं? अब पूछनेवाला कौन है? कोई बुद्धिमतां कनिष्ठ है।

बुद्धि हीन तनु जानिके सुमिरौं पवन-कुमार।
बल बुद्धि बिद्या देहु मोहिं हरहु कलेस बिकार।।

बुद्धिमत्ता में बुद्धपुरुष हनुमान को मेरे गोस्वामी बुद्धि कनिष्ठ प्रश्न पूछते हैं, 'जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूं।' बुद्धिमतां कनिष्ठ तुलसीदास अपने आपको कुमति-कुमति कहा करते हैं; मंदमति कहते हैं। बुद्धपुरुष हनुमान से मंदमति तुलसीदास प्रश्न पूछते हैं कि हे पीरों के पीर, पीराई से भरे पीर के लक्षण क्या होते हैं? अब पांच जवाब। पहले पीर से धीर ने पूछा। फिर साधु से साधक ने पूछा। आज बुद्धपुरुष से बुद्धि कनिष्ठ पूछ रहा है। अभी एक बात और है। सद्गुरु से उसके शिष्य पूछते हैं। बुद्धपुरुष से पूछे गए पांच प्रश्न। इस विहळापीर की भूमि में पीराई की चर्चा हम कर रहे हैं 'मानस' की दो पंक्ति के आधार पर। मेरे हनुमान से पूछा गया, पीराई से भरपूर पीर किसे कहते हैं? पहला जवाब, समय आये तब आंख खुलवाए और समय आये तब ऐसा कहे कि आंखें बंद कर दो उसका नाम पीर। पहला लक्षण, 'रामायण' के आधार पर, यस। क्योंकि आज की प्रश्नोत्तरी 'रामायण' के आधार पर है। मेरा बुद्धिमतां वरिष्ठ पीरों का पीर हनुमान और मेरा गोस्वामी उनसे प्रश्न पूछता है।

तो बाप! आंख कहां खोलनी, कहां बंद रखनी? अब शास्त्रीय चर्चा सुनिए। ज्ञानमार्ग में भी आंख खोलने की बात है और आंख बंद करने की बात है। हनुमानजी ज्ञानी हैं। कर्म मार्ग में भी आंख खोलने और आंख बंद करने की बात है। हनुमानजी बहुत कर्मठ हैं। कुछ समय के लिए अंदर आत्मलीन हुए तब जामवंत ने कहा कि भूल जाइए न, आप कर्मठ हैं, ऐसे बैठ नहीं जाना है ध्यान में। राम का कार्य करना है। और 'रामचंद्र के काज सँवारे।' कर्मठ है। कर्मठ को भी आंख बंद करना आना चाहिए, आंख खोलते आना चाहिए। और भक्ति में भी आंख बंद करने और आंख खोलने की महिमा है। ऐसा 'रामायण' कहता है। बहुत से लोग कर्ममार्ग में श्रम अधिक करते हैं। और श्रम करना हो तो आंखे खुली रखनी पड़ती है पर विश्राम करते समय आंखें बंद ही रखनी पड़ती हैं। ईश्वर ने आंख को पलकें इसलिए दी हैं कि साधक विश्राम करना हो तो बंद कर दे। और पुरुषार्थ करना हो तो खोल दे। यह कर्ममार्ग है। मेरा हनुमान ऐसा कर्मठ है कि उसे जब लगे तब आगे बढ़कर आंखें खोलकर सब को लीड करे कि चलो, यहां पानी है। मुझे पानी दिखता है। मैं आंख खोले हूं। सब को ले जाये। और उसी हनुमान को लगे कि वानर सभी बच गए हैं। अब कोई चिंता नहीं है। इसलिए सागर के किनारे मेरा हनुमान आंख बंद करके चुप बैठ जाता है। कर्म का मार्ग आंख खोलने और आंख बंद करने की बात है।

मेरे समक्ष जो समाज है उसको नज़र में रखकर मैं बोल रहा हूं। मुझे सभी हिन्दीभाषी कहते हैं, बापू, ये गुजराती कैसी भाषा है! हमें कुछ समझ में नहीं आती तो भी हम टी.वी. के डब्बे के सामने बैठे हैं? गुजरात में आइए। गुजराती भाषा तो जबरदस्त भाषा है! मातृभाषा को भूलना नहीं बाप! नरसैया की भाषा है ये। ये मेहता की भाषा है। इसको भूलना मत। इसलिए कहता हूं कि अंग्रेजी मीडियम में पढ़ना पर घर में गुजराती बोलना। गांव में गुजराती बोलना। कितने लोगों को मैं जानता हूं कि अंग्रेजी में पढ़े हैं। ये भईलुभाई राजकुमार कोलेज में पढ़ा हुआ लड़का है। ये आपके सामने अंग्रेजी बोलता हो तो पता नहीं साहब! गुजराती में ही बोलते हैं। ऐसे कितने लोगों को मैंने देखा है बिलकुल इंग्लिश मीडियम में पढ़े हैं पर पता ही नहीं चलेगा कि ये अंग्रेजी पढ़े होंगे! अपनी भाषा बोलते हैं। जरूरत हो वहां अंग्रेजी की टोपी उड़ जाये ऐसी अंग्रेजी बोले परंतु माँ-बाप के समक्ष गुजराती बोले, बच्चों के साथ गुजराती बोले, अपने पडोस, अपने गांव में गुजराती बोलें, गुजराती भूल जाएंगे तो बहुत घाटे का सौदा होगा साहब! और दो-पांच कथा करके मैं फिर गुजराती में कथा देता हूं साहब! मेरी योजना है कि मेरा गुजरात और मेरी मातृभाषा के लोग भाषा न भूल जाएं। उन्हें ये भाषा हमेशा याद रहे। इसलिए एकदम ठेठ गुजराती में जाता हूं। ठेठ वो जिसका शिष्ट साहित्य भी अर्थ न कर सके! मेरे भाई-बहनों, छोटे-छोटे बच्चों को भी अच्छी कहानियां कहना। कहानियों की पुस्तकें देना। ऐसे फोन न पकड़ा देना कि अपने छोटे-छोटे बच्चे हमेशा व्यस्त हो जाएं! आप उन्हें बचाना। क्योंकि

माताओं को कहीं बच्चे ही नहीं संभालने हैं! बाप को तो कहीं समय ही नहीं! अब बच्चों को पकड़ा दें कि लो खेला करो! आंख बिगड़ेगी, मन बिगड़ेगा, चित्त बिगड़ेगा। उसके भविष्य का तो विचार कीजिए बाप! अपनी भाषा सीखाएं। ये नरसैया की भाषा है। अपनी भाषा में बोल रहा हूं।

बुद्धपुरुष, 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' कनिष्ठ को जवाब दे रहा है कि पीराई से भरे हुए पीर का पहला लक्षण, कब आंखें बंद करनी है और कब खोलनी हैं इसका जानकार हो, अनुभवी हो। तो कर्ममार्ग में अधिकतर मनुष्य आंखें खुली ही रखते हैं। आप पूरे दिन काम करें और फिर आप रात को सोने जायें खटियां पर, खेत में सोये हो, घर में सोये हो, मुहल्ले में खटियां पब गिरें तब आपको ऐसा लगे कि ओहो! मुझे तो बहुत काम करना है। आप आंखे खुली ही रखे तो आपको विश्राम नहीं मिलेगा। उस वक्त आंखें बंद ही करनी पड़ेगी। कर्ममार्ग में समय पर आंखें खोलता है और समय अनुसार आंखें बंद करता है, उसके कर्म उजले रहेंगे। ये हनुमानजी समझाते हैं। हनुमानजी दूसरा समझाते हैं कि अखंड को देखने के बाद खंड को नहीं देखना चाहिए उन आंखों को। आंखों का दीप यदि हरि ने दिया है तो अखंड को देखने के बाद खंड को नहीं देखना चाहिए। देखना ही हो तो पहले खंड से शुरूआत कीजिए। और फिर अखंड तक पहुंच जाओ और फिर आंखें बंद कर डालो। दो जन जनकपुरी में मिलते हैं। एक खंड से अखंड को देखनेवाला और दूसरा अखंड से खंड को देखनेवाला। पर अखंड से खंड देखनेवाले मात्र परशुराम हैं। उन्हें देखना नहीं आया। उन्होंने राम को देखा है। पुष्पवाटिका में जानकी भी राम को देखती हैं। आदमी को थकान लगती है न तब आंखें बंद करके सो जाना चाहिए। पर परशुराम थके ही नहीं। राम को देखकर उनकी आंखें स्थिर हो गई। अखंड को देखने के बाद आंखें बंद करनी चाहिए। और मेरी माँ जानकी ने रामजी को देखा, वे सभी खंडित वस्तुओं को देखते-देखते सांसारिक कदम बढ़ाते-बढ़ाते मेरी माँ ने जब राम को देखा पुष्पवाटिका में और-

लोचन माग रामहि उर आनी।
दीन्हे पलक कपाट सयानी।।

पहले बाग में गई। सब खंड है। सरोवर में स्नान किया, खंड है। मंदिर में गई। समय-समय पर हुई सब प्रक्रियाएं हैं। पर देखते-देखते जब राम को देखा। अखंड के दर्शन के बाद अब खंड में आंख नहीं जानी चाहिए, इसलिए जानकी ने आंखें बंद कर दी। और तुलसी शब्द प्रयुक्त करते हैं 'सयानी।' जनक की पुत्री तो ऐसी ही होगी न! उसके बाद मूल तत्त्व को देखने के बाद आंखें फाड़-फाड़कर चारों ओर देखती नहीं रहेगी। जनक की कन्या है। परशुराम की तकलीफ़ ये है, अखंड राम को देखे। एक क्षण के लिए इस आदमी की आंखें भी चलित हुई परंतु वो धनुष के टुकड़े देखे। अखंड में से खंड में गये उसमें महाराज चुक गये हैं। कर्ममार्ग में परिश्रम करें तब आंख खुली रखें। श्रम में आंख खुली और विश्राम में आंख बंद हो।

अब भक्तिमार्ग एक बुद्धिमान समझा रहा है। पीर के ऐसे लक्षण होते हैं। भक्तिमार्ग में आंख खोलना चाहिए। और आंख खुली रखना ये विचार है। मनुष्य विचार करता है। सब कुछ देखता है, क्या करूं, क्या करूं? और आंखें खुली रखकर काम करना चाहिए अवश्य। विचार कर लो बुद्धि से; आंख खोल-खोलकर सब कुछ देख लो पर एक समय तो आयेगा ही, लाना ही पड़ेगा कि बहुत विचार कर लिया अब थोड़ी देर आंख बंद करके विश्वास रखना चाहिए। आंखें बंद करना ये विश्वास है, आंखें खोलना ये विचार है। ये भक्तिमार्ग का सूत्र है। देख लेना सब कुछ फिर अमुक विश्वास में उतरना ही पड़ता है। रात को तो सो ही जाना चाहिए कि सुबह होगी, सूरज उगेगा फिर मैं काम में लगूंगा। यह तो भरोसा लेकर ही सोना चाहिए न! रात को सोते समय ऐसा होता है कि मैं आंख बंद कर दूंगा और कोई मुझे मार डालेगा तो? तब तो नींद ही नहीं ले सकते हैं। आंख बंद होनी ही चाहिए। क्या कहा और क्यों कहा, ऐसे संशय में न होना चाहिए। मेरे गुरु ने जो कह दिया, 'बोले सो निहाल।' फिर आंखें बंद।

एने भरोसे रहेवायजी...
भरोसे रहेवाय पंडनुं डहापण नो डोळाय...
'काग' सघळा रोग नासे, कीधुं एम खवायजी;
वैद घरनां वाटेलां ते ओसड केम ओळखाय?

और तीसरा ज्ञानमार्ग। ज्ञानमार्ग में भी आंखें खुली रखनी और फिर ज्ञानमार्ग में आंतर्चिंतन करने के लिए आंखें बंद करनी चाहिए। ज्ञानी को आंखें बंद करनी चाहिए। आंख खोलना और आंखें बंद करना दोनों ज्ञानी के लिए जरूरी है। बुद्धपुरुषों ने बहुत कहा है, बहुत ज्ञान दिया है। जगत को धन्य कर दिए हैं। परंतु आंखें बंद करके पहले आत्मा को पहचाने। इसीलिए मेरा नरसैया कहता है-

ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चीन्यो नहीं,
त्यां लगी साधना सर्व झूठी।

आत्मतत्त्व को प्राप्त करना हो उसे अपनी आंखें बंद करनी

चाहिए। मेरे 'रामायण' का बुद्धपुरुष मुझको और आपको पीराईपन बताता है तब ऐसा कहता है कि आंख कब बंद करना चाहिए, कब खोलना चाहिए यह बुद्धपुरुष जानता है। और ऐसा जिसमें दिखे कि इस इन्सान को जब विचार करना होता है तब आंखें खुली रखकर बराबर विचार करता है और जब ऐसा लगता है कि सभी विचार गलत हैं, अब उसके भरोसे रहना चाहिए, तब आंखें बंद करता है उसको बुद्धपुरुष जानना चाहिए।

दूसरा प्रश्न बुद्धिमतां कनिष्ठ पूछता है बुद्धिमतां वरिष्ठ से कि पीर की पीराई के खातिर कुछ कहे। तब कहता है कि पीराई से भरपूर पीर उसे समझना चाहिए कि समय आने पर तुम्हें निर्भय बनाए और समय आने पर तुम्हें थोड़ा भय दिखाए। निर्भयता अच्छा गुण है पर निर्भयता में अहंकार आने का खतरा है। बालि में निर्भयता बहुत है। अवश्य, बालि जैसा निर्भय कौन है? पर उसकी निर्भयता में अहंकार अधिक है, मैं किसी से डरता नहीं, मैं पीछे कदम नहीं हटाऊंगा, मुझे कोई डरा नहीं सकता! अवश्य बालि में ये लक्षण है। पर अहंकार उतना ही है। बालि की निर्भयता में अहंकार है। स्वयं कुबूल करता है, विलंब से ही पर कुबूल किया, मुझे अभिमानी जानकर आपने कहा कि मैं तुझे अमर कर देता हूं पर मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं कि कल्पवृक्ष की डालें काटकर बबूल के लिए बाड़ बनाऊं। बबूल के जतन के लिए कल्पवृक्ष को नहीं काटा जाना चाहिए। मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूं। अभिमानवाला शरीर लेकर शाश्वत नहीं होना है। हे हरि, अब तो मेरी देह भी आपको अर्पण। और इस देह से जो बालक उत्पन्न हुआ, मेरा पुत्र भी आपको अर्पण। अब आप सब कुछ ले लें। और जगत में सच्चा बालि ये है। हमें प्रगतिपत्रक में शिक्षक नहीं भेजते हैं कि वालि की सही करा लाओ। वालि यानी ये है। घरघर बालि हैं। पर सच्चा बालि वो है जो अपने पुत्र को हरि के हाथ में सौंपे।

एक तो अभयतावाला अभिमान नुकसान करता है और दूसरा जो निर्भयता मनुष्य को स्वैच्छाचारी बना देती है वो नुकसान करती है। बालि में अभिमानवाली निर्भयता है। पर सुग्रीव में निर्भयता आयी। हनुमानजी ने कहा, सुग्रीव को अपनाकर अभय कर दीजिए। वो निर्भय हो गया तो स्वैच्छाचारी बन गया। राम की भी चिंता नहीं! राम प्रवर्षण पर चातुर्मास करते हैं और ये भोग भोग रहा है! एक दिन भी पूछने नहीं गया कि आपकी व्यवस्था क्या है? क्योंकि स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर डाला। निर्भयता का ये इन्सान ने दुरुपयोग किया। और इसलिए मेरा बुद्धपुरुष हनुमान उसे जगाते हैं कि बालि अहंकार की निर्भयता से मारा गया और तुम स्वैच्छाचारी निर्भयता से मरोगे। इसलिए जाग जाओ। यह है पीर का कार्य। इसका नाम पीर है। जो अहंकार की निर्भयता छुड़ाता है। और हम निर्भयता में चाहे जैसा वर्तन करते हो उसमें से हमें थोड़ी भय बतलाकर रोक लेता है। इसलिए तुलसी कहते हैं, राजा का जैसे डर लगता है वैसे हे हरि, मुझको आपका थोड़ा डर लगता है। मुझको इतनी सारी निर्भयता न दो कि मैं स्वैच्छाचारी बन जाऊं। मुझको क्या? मैं तो चाहे जैसे वर्तन करूंगा। ये है सुग्रीव की भूल। और राम भी कहते हैं लक्ष्मण को कि उसको भय दिखाकर ले आओ। समय के अनुसार आंखें खोले, बंद करे वो पीर। और ऐसा समझाता है वो पीर। अहंकारवाली निर्भयता नुकसान करती है। स्वैच्छाचारी निर्भयता, स्वच्छंद बनानेवाली निर्भयता भी नुकसान करती है।

तीसरा, जिसे इतनी ख़बर पड़ती है कि किस जगह जीवन है और किस जगह मृत्यु है वो पीर है। हनुमान को यह पहचान हो गई। रींछ और वानर को जब बहुत प्यास लगी। सीता की खोज करने गए हैं और मरने की तैयारी। उस दिन लगा, पानी बिना सब मर जाएंगे। उस दिन एक जीवन की गुफ़ा हनुमानजी ने खोज ली जहां स्वयंप्रभा बैठी थी। सरोवर था। सब ने पानी पिया, फल खाया। जीवन मिला। और दूसरी एक ऐसी गुफ़ा आई सागर के किनारे, उस गुफा में संपाति था। वो संपाति ऐसा कह रहा था कि वानरों को मैं खा जाऊंगा। वह मृत्यु की गुफा है। और दोनों में तटस्थ बना रहकर जीवन किसको कहते हैं? मृत्यु किसे कहते हैं? जीवन की गुफा क्या है? मरण की गुफा क्या है? उसका विश्लेषण करता हो उसका नाम पीर। उसका जागरण कराये उसका नाम पीर।

चौथा प्रश्न बुद्धिमतां वरिष्ठ से बुद्धिमतां कनिष्ठ का। भक्ति का दर्शन करने के लिए आप असमर्थ हो तो भी निराश नहीं होना चाहिए। जो भक्ति का दर्शन करे उसकी राह देखनी चाहिए। संपाति कहता है, ए जामवंतजी, अंगद आइए, आइए। देखो ये समुद्र के बीच टापू है न उसमें जो अशोक नामक उपवन है, उसमें अशोक नामक एक वृक्ष है। उसके नीचे एक वेदिका है उस पर सीता बैठी हैं, चिंता में बैठी हैं। ये सब दिखता है पर ये सात योजन पार करके जाएगा, वो सीता को पाएगा। इस दुनिया में बहुत से वर्तमानवादी होंगे, बहुत भूतवादी होंगे और बहुत से भविष्यवादी। इन तीनों काल से बाहर कर दे उसका नाम पीर है। तीनों से कालातीत बना दे और तैयारी कर दे उसका नाम पीर है। सभी रींछ और वानरों ने कहा, हम से

लंका में नहीं जाया जाएगा। सीता तक नहीं पहुंच सकते। पर एक काम सब ने अच्छा किया कि हनुमानजी, आप जाइए, हम यहां बैठेंगे। और माँ का दर्शन करके आप आएं, आपके दर्शन करके जायेंगे। हम कदाचित भक्ति नहीं कर सकते तो चिंता नहीं, पर जो भजन करता हो उसकी राह देखना कि वो आयेगा। यह उद्घाटन एक बुद्धपुरुष करता है। और हुआ ऐसा साहब! सभी जहां के तहां बैठे रहे। हनुमानजी ने कहा कि तुम लोग जाना तहीं। ये कहकर गया बुद्धपुरुष। कंदमूल, फूल खाकर यहां रहना। और पीराई उसे कहेंगे, जो प्रभुमय जीये पर वह किसी स्थान का आग्रही न रहे। बुद्धपुरुष क्या करते हैं? चेतना का संपूर्ण परिवर्तन कर डालते हैं। नेगेटिव का पोझिटिव कर डालते हैं। चेतना का जिस प्लग में पीन डालनी हो वो उस प्लग में डाल देता है। जैसा ठाकुर रामकृष्ण कहते हैं, धान का पौधा यहां से लेकर वहां रोप दो यानी बात पूरी। इसको मैं इस अर्थ में लेता हूं। कभी अपनी बुद्धि कुबूल न करे कि ऐसा होगा? पर निराशा से विश्वास में परिवर्तन कर दे, सब हो सकता है। बुद्धि से इसमें विचार करने लगे तो कुछ सूझ नहीं पड़ती! ये विसामणबापू के समक्ष आकर किसीने कहा होता, ये गद्दी हमें दे दीजिए तो वे देकर चले जाते। उसे कोई अपने स्थान का वो न होगा। पर आनेवाला मांगेगा नहीं और बैठनेवाले को ख़बर होगी कि भविष्य में ये पाळियाद जगत को बहुत बड़ी प्रेरणा देगा। इसलिए उसे किसी स्थान का आग्रह नहीं होता। पीर को, फ़कीर को क्या है? वसीम बरेलवीसाहब का बहुत प्रसिद्ध शे'र-

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटायेगा।
चरागों को अपना कोई मकां नहीं होता।

दीये का अपना कोई मठ नहीं होता। वो तो जहां रखो वहां उजाला कर देता है साहब! हनुमानजी महाराज ऐसे बुद्धपुरुष हैं, जो इन सब पीराई से भरे हुए महापुरुष हैं। पर उन्होंने किसी स्थान का आग्रह नहीं रखा। रावण की मृत्यु। अयोध्या में रामराज्य की स्थापना हुई। छः महिना बीत गया। सभी मित्रों ने विदाई ली। हनुमानजी ने हाथ जोड़कर सुग्रीव से कहा कि दासत्व तो मैंने आपका स्वीकार किया है, आप कहे तो अयोध्या में रुक जाऊं? और सुग्रीव ने कहा, तुम्हारा पुण्य क्षीण नहीं हुआ है कि तुम्हें मृत्युलोक में जाना पड़े। तुम्हारा पुण्य जसका तस है। तुम अयोध्या में ही रुक जाओ। कैसी मर्यादा है! कैसे कर्तव्यों को याद रखा हनुमान ने! हनुमानजी रुकते हैं। और एक ही आदमी परिवार में बहुत अधिक समय तक रुक जाये तो फिर उसमें थोड़ा अभाव आने लगता है। अरुचि पैदा होगी। उसमें भी, हनुमानजी तो चौबीस घंटे किंकरी में रहनेवाले जीव इसलिए भगवान राम के आसपास घूमते हैं। राम-परिवार को कहीं कहीं अखरने लगा! भाई, आप जाओ न ऐसा कोई कह नहीं सकता था पर कहीं सब के व्यवहार से हनुमानजी को ऐसा लगा कि मेरा स्थान कहां है? एक दिन मारुति उदास बैठा है। आंखों में आंसू आ रहे हैं। मारुति की पीठ पहचान गए रामजी। उनके पास गए, 'हनुमंत!' 'भगवंत!' मुझे तो अच्छा नहीं लगता है पर आपको भी पसंद नहीं। फिर भी कहता हूं, मैं जाऊं अब? बहुत रुका।' ऐसा नहीं कहा कि सब को मैं पसंद नहीं। अब सब को मेरे साथ थोड़ा वो होता है। पर बड़प्पन नहीं छोड़ते मेरे बाप! आश्रय करना तो समर्थ का करना, असमर्थ का नहीं। ऐसे समर्थ शंकर हैं, ऐसे समर्थ राम हैं, ऐसे समर्थ सद्गुरु हैं। और याद रखिएगा कि पादुका किसी की भी ले न तो समर्थ की ही लें। असमर्थ की नहीं ली जाती। 'रामायण' में ऐसा स्पष्ट लिखा है 'अयोध्याकांड' में कि 'प्रभु करि कृपा'; पादुका कौन दे सकता है? जो समर्थ होगा वही दे सकता है। प्रभु का अर्थ होता है समर्थ। असमर्थ पादुका नहीं देगा। और समर्थ के पास से आप छिन नहीं सकते; समर्थ के पास से आप खरीद नहीं सकते। समर्थ को आप लालच नहीं दे सकते। तो पादुका मिलेगी कैसे? वो कृपा करेगा तो ही मिलेगी, इसीलिए 'प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।'

गतकल की कथा में सती ने, दक्ष की पुत्री ने हिमालय के यहां जन्म लिया और नारद ने नाम रखा उमा, अंबिका, भवानी। शिव को प्राप्त करने के लिए पार्वती ने बड़ा तप किया। यहां आकाशवाणी ने तप का फल दिया कि तुम्हें शिव मिलेंगे। उधर भगवान शिव के पास परमात्मा प्रगट होते हैं और कहते हैं, 'मैं आपसे एक वचन मांगने आया हूं। आप भवानी के साथ लग्न करे।' 'महाराज, मैंने तो त्याग किया है सती का।' बोले, 'वो तो दक्षकन्या का त्याग किया है; हिमालयपुत्री का कहां किया? अब सती नहीं है, पार्वती हैं। उसे स्वीकार कीजिए।' 'महाराज, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।' भगवान अंतर्धान हुए। शिव के पास सप्तऋषि आये। भवानी शरणागति की परीक्षा में उत्तीर्ण हुई। उसी समय समाज में ताड़कासुर नाम का राक्षस उत्पन्न हुआ। उसने सभी को बहुत त्रास दिया। देवताओं ने ब्रह्मा से कहा, ताड़कासुर का निधन कैसे होगा? कहा, अब तो शंकर विवाह और शंकर के घर पुत्र का जनम हो तो ही ताड़कासुर मरेगा। देवताओं ने आकर विनय किया, आप लग्न करें, हिमालयकन्या के साथ विवाह करे।

भगवान शंकर का गणों ने शृंगार किया। नंदी पर सवारी की और भगवान भूतनाथ पार्वती को स्वीकार करने के लिए हिमालय प्रदेश पहुंचे। आख़िर में शिव और पार्वती का विवाह हुआ। हिमालय ने अपनी कन्या को विदा किया। शिव पार्वती सह कैलास पहुंचे। बहुत समय तक शिव और पार्वती ने नितनूतन विहार किया। समय मर्यादा पूरी हुई तब एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम कार्तिक स्वामी। कार्तिकेय ने ताड़कासुर को निर्वाण दिया। इधर शंकर भगवान कैलास के उस वटवृक्ष के नीचे निजासन में बैठे हैं। योग्य समय देखकर पार्वती के पास आये। शिव ने आदर दिया। बायीं ओर आसन दिया। अब भवानी प्रश्न पूछती हैं, 'महाराज, मेरा एक जन्म चला गया पर अभी भी भ्रांति नहीं गई कि राम ब्रह्म हैं या मनुष्य हैं? अब मुझको रामकथा कहके ही मेरे मन का निवारण कीजिए। रामतत्त्व है क्या? भगवान शिव ने प्रसन्नता व्यक्त की कि हे हिमालयपुत्री, आप को बहुत धन्यवाद है। देवी, आप मेरे मुख से रामकथा की गंगा बहवाने जा रही हैं। सुनिए, रामतत्त्व क्या है? ईश्वर वह है, परमात्मा वो है जो बिना पैर चलता है; कान बिना सुनता है; हाथ बिना सभी कर्म करता है; आंख बिना सब को देख सकता है; जीभ बिना बोल सकता है; शरीर बिना सब को स्पर्श कर सकता है। वो तत्त्व परमतत्त्व है देवी। राम का अवतार किसलिए हुआ देवी, उसके पांच कारण हैं। पहला कारण जय-विजय वैकुंठ के दो द्वारपाल, उन्हें मिला शाप। दूसरा कारण सती वृंदा ने विष्णु भगवान को शाप दिया कि तुम्हें ऐसा भगवना पड़ेगा। तीसरा कारण नारद ने शाप दिया कि तुम को मनुष्य होना पड़ेगा। चौथा कारण मनु और शतरूपा, उन्हें हम मानव सृष्टि के आदि माता-पिता जानते हैं। गोमती नदी के किनारे उन्होंने खूब तप किया। ईश्वर ने दर्शन देकर कहा, मांगो। तब कहे, तुम्हारे जैसा पुत्र हमारे घर जन्म ले। पांचवां कारण राजा प्रतापभानु को ब्राह्मण ने शाप दिया और प्रतापभानु रावण हुआ। अरिमर्दन कुंभकर्ण हुआ। उसका एक मंत्री था जिसको धर्म में रुचि थी, वो आदमी दूसरी माता के पेट से विभीषण हुआ।

रामकथा में रामजन्म की कथा से पहले रावण के जन्म की कथा है। दिवस उगता है उससे पहले रात ही होती है। इसलिए तुलसीदासजी ने यह क्रम संभाले रखा। रावण, कुंभकर्ण, विभीषण बहुत तप करते हैं। दुर्गम और दुर्लभ वरदान प्राप्त करने के बाद रावण का स्वैच्छाचार बढ़ गया। जैसा चाहता वैसा वर्ताव करने लगा। भ्रष्टाचार व्याप्त गया। पृथ्वी व्याकुल हो गई। गाय का रूप धारण कर रोने लगी पृथ्वी। ऋषि-मुनिओं के पास गई। उन्होंने कहा, रावण का जुल्म ऐसा है कि हम को विचार करते बंद कर दिया है! हमारे चिंतन-मनन खत्म हो गए! देवताओं ने कहा, रावण आता है तब हम सब मेरु पर्वत की गुफा में छिप जाते हैं। हमारा कोई वश नहीं। सभी ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा कहते हैं, रावण को मैंने वरदान दिए थे वे मंगल वरदान थे पर उसने दुरुपयोग किया है। मैं कुछ नहीं कर सकता। अब एक ही उपाय है। पुकार करें परमतत्त्व से और वे ही उसका जवाब दें। सब ने परमात्मा को पुकारा। आकाशवाणी हुई, हे देवगण, हे मुनिगण, हे धरित्रि, मैं अंश सहित रघुवंश में अवतार लूंगा। थोड़ा धैर्य धारण कीजिए। तीन सूत्र हैं ईश्वर की प्राप्ति के यहां। पहला पुरुषार्थ, इन सब ने बहुत पुरुषार्थ किया रावण से बचने के लिए। पर अपने पुरुषार्थ की भी सीमा होती है। पुरुषार्थ की सरहद पूरी होने पर प्रार्थना करना कि बस, अपने से जो हुआ हमने किया मालिक, अब आपको पुकार रहे हैं। हम प्रार्थना करें तो कितना कर सकते हैं? हमारी सीमा है। प्रार्थना की सीमा पूरी हो तो फिर प्रतीक्षा करनी चाहिए। हमारी तकलीफ़ क्या है? हम पुरुषार्थ करते हैं परंतु प्रार्थना नहीं करते! पहले पुरुषार्थ, मुझे और आपको निष्क्रिय नहीं होना है। पर केवल पुरुषार्थ अहंकारी भी बना देगा। इसलिए दूसरी उतनी ही आवश्यक है प्रार्थना। प्रार्थना करने के बाद एक तीसरा कदम वो प्रतीक्षा, राह देखना है।

ए आवशे, ए आवशे, ए आवशे।

फिर राह देखनी। शबरी ने पुरुषार्थ किया, प्रार्थना की, फिर शबरी ने प्रतीक्षा की, राम आयेंगे। अहल्या ने पुरुषार्थ किया, अहल्या ने प्रार्थना भी की मनोमन फिर एक मूर्ति की तरह बैठ गई प्रतीक्षा करने कि हरि आयेंगे। मैं पुन: एक बार कहता हूं, परमात्मा प्रतीक्षा का विषय है। मनुष्य को प्रतीक्षा करनी पड़ती है। हम प्रतीक्षा नहीं करते। तीनों वस्तु जोड़नी पड़ेगी। पुरुषार्थ, प्रार्थना और प्रतीक्षा ये तीनों इकठ्ठा होंगे तब कोई परमतत्त्व का प्रागट्य होगा।

तुलसी हमें अयोध्या ले जाते हैं, जहां रघुवंश का शासन है। वर्तमान राजा धर्मधुरंधर, गुणनिधि ज्ञानी राजा दशरथ है। कर्मयोगी है। ज्ञानयोगी है। भक्तियोग भरपूर है। कौशल्यादि प्रिय रानियां हैं। राजा का दांपत्य बहुत अच्छा है। आज एक बड़ी क्राइसिस, एक बड़ी समस्या समाज की ये है कि सब का दांपत्य बिगड़ता जा रहा है। इसलिए राम नहीं जन्म लेता, हराम जन्म लेता है! राम को जन्म दे सके ऐसे गृहस्थाश्रम की रामकथा कथित एक छोटी-सी फोर्म्यूला। दो ही वस्तु। पुरुष को अपनी पत्नी को प्रेम देना चाहिए। स्त्री प्रेम की भूखी होती है। उसे आप भावनाएं दिखाओ प्रेम दीजिए। अर्थात् उसे कुछ नहीं चाहिए साहब! और पुरुष को थोड़ा अहंकार होता है। स्त्री को बस उसे आदर देना चाहिए। उसका अहंकार पोषना चाहिए। इन दो सूत्रों से हमारे आंगन में राम जन्मेगा। परंतु न तो पुरुष प्रेम देता है और न ही वो आदर देती हैं। कैसा दिव्य दांपत्य था, पर दशरथजी को एक पीड़ा थी कि हमें पुत्र नहीं है। रघुवंश मुझसे समाप्त हो जाएगा? दुनिया मेरे पास आती है समस्या लेकर, मैं राजा किसके पास जाऊं? इसलिए राजद्वार आज गुरुद्वार जाता है। वशिष्ठजी के पास जाते हैं कि हे बाप, मैं अपनी समस्या ओर किसको कहूं? मेरे भाग्य में पुत्रसुख नहीं है? 'राजन्, एक नहीं, चार पुत्र आपके भाग्य में हैं पर आप कभी आकर ब्रह्म की जिज्ञासा कीजिए तो मैं आपके घर में ब्रह्म को बालक बना दूं। थोड़ी धीरज रखिए। चार पुत्रों के पिता होंगे। पर राजन्, एक काम करना पड़ेगा, यज्ञ करना पड़ेगा।

शृंगि ऋषि को बुलाए। पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया है। श्रद्धा और प्रेम से आहुतियां देने लगे। अंतिम आहुति जब दिए हैं उसी समय यज्ञकुंड से यज्ञपुरुष अग्नि के रूप में प्रगट हुए। हाथ में प्रसाद की खीर का चरु है। और प्रसाद लेकर आया यज्ञपुरुष वशिष्ठजी को प्रसाद दिया है, महाराज, यह प्रसाद राजा को दीजिएगा और कहिएगा अपनी रानियों को इसे यथायोग्य बांट दे। प्रसाद की आधी खीर कौशल्या को दी। आधी खीर के दो भाग किए। चौथे भाग की खीर कैकयी को अर्पण हुई। चौथे भाग की जो प्रसाद थी फिर उसके दो भाग करके कैकयी और कौशल्या के हाथों से प्रसन्न चित्त हो सुमित्रा को दिया है। तीनों रानियों ने प्रसाद को उदरस्थ किया और सगर्भा स्थिति का अनुभव किया है।

समय बीतने लगा। भगवान के प्रगट होने का अवसर नज़दीक आया। पंचांग अनुकूल हुए, योग, लग्न, ग्रह, वार और तिथि। भगवान के प्रगट होने का क्षण नजदीक आया। त्रेतायुग, चैत्रमास, शुक्ल पक्ष, नवमी तिथि, मध्याह्न का सूरज। अभिजित सुहाता है। मध्य दिवस है। लोगों के भोजन करके थोड़ी देर विश्राम करने का समय है। नदियों में अमृत बहने लगा है। मंद सुगंध शीतल पवन बहने लगा। स्वर्ग के देवता गर्भ की स्तुति करने लगे। पृथ्वी के ब्राह्मण देवता, ऋषि-मुनि और पाताल के नागदेवता आज ठाकुरजी की गर्भस्तुति करते हैं। माँ कौशल्या को शुकन होने लगा। देवताओं का समूह प्रभु की स्तुति करके अपना-अपना स्थान लेते हैं। उसी समय जगनिवास, पूरे जगत में जिसका निवास है अथवा पूरा जगत जिसमें वास करता है ऐसे भगवान, ईश्वर, परमात्मा, परमतत्त्व जो नाम दीजिए वो मुबारक; अयोध्या के राजभवन में माँ कौशल्या के राजप्रसाद में प्रकाश होने लगा। प्रकाश आकार लेने लगा और नारायणरूप धारण किया। तुलसी लिखते हैं-

भये प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी।

तुलसीदासजी कहते हैं, भगवान चतुर्भुज रूप में प्रगट हुए। परमात्मा का वो दिव्य रूप देखा। माँ कौशल्या ने कहा, मैं तुम्हारी किस तरह स्तुति करूं? माँ के सुजान वचन सुनते ही भगवान बालकरूप लेकर कौशल्या की गोद में आकर बालक की भांति रोने लगते हैं। रुदन की आवाज़ सुनकर रानियां और दासियां अचानक कौशल्या के भवन में सब भ्रमित हो अंदर आई। प्रगटित हुआ है ब्रह्म और हुआ है सब को भ्रम कि ये क्या है? भ्रमसहित सभी रानियां आ गई। माँ की गोद में अलौकिक बालक के दर्शन करते ही सब की आंखें प्रेमाश्रु से भर गई। इधर नगर में ख़बर पड़ी। दास-दासियां दौड़ी! महाराज दशरथ को कहा, राजाधिराज, बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो। आपके यहां पुत्र का जन्म हुआ है। और राजा ने जब सुना, मेरे यहां पुत्र का जन्म हुआ है, ब्रह्मानंद की अनुभूति होने लगी। वशिष्ठजी को बुलाओ, उत्सव मनाओ, बधाई करो। पुत्रजन्म की बधाई अयोध्या में शुरू हो गई। मेरी व्यासपीठ से विहळाधाम की पवित्र भूमि से, विहळाबापू का जब प्रागट्य दिवस है उस दिन भगवान राम का प्रागट्य है उस समय पाळियाद की व्यासपीठ पर से आप सभी को, समस्त गुजरात को, भारत को और पूरी दुनिया को रामजन्म की बधाई हो, बधाई हो, बधाई हो!

आंखें बंद करना ये विश्वास है, आंखें खोलना ये विचार है। ये भक्तिमार्ग का सूत्र है। देख लेना सब कुछ फिर अमुक विश्वास में बैठना ही पड़ता है। रात को तो सो ही जाना पड़ता है कि सुबह होगी, सूरज उगेगा फिर मैं काम में लगूंगा। यह तो भरोसा लेकर ही सोया जाता है न! रात को सोते समय ऐसा होता है कि मैं आंख बंद कर दूंगा और कोई मुझे मार डाले तो? तो तो नींद ही नहीं ले सकते हैं। आंख बंद होनी ही चाहिए। क्या कहा और क्यों कहा, ऐसे संशय मन में न होना चाहिए। मेरे गुरु ने जो कह दिया, 'बोले सो निहाल।' फिर आंखें बंद।

कथा-दर्शन

- मेरे लिए 'रामचरितमानस' पचीसवां अवतार है। मेरी ऐसी दृढ़ श्रद्धा है।
- हनुमंततत्त्व बिलकुल बिनसांप्रदायिक परमतत्त्व है।
- धर्म कल्याणकारी होना चाहिए।
- इस जगत को धंधादारी की ज़रूरत नहीं है, धर्मधारी की ज़रूरत है।
- भक्ति यह सनक का नाम नहीं है। भक्ति कुछ बिलग ही तत्त्व है।
- बड़ी से बड़ी संपदा हरिनाम है, हरिभजन है।
- काम के प्रहार से वही बच सकते हैं जिसका भजन ज्यादा हो।
- सावधान करे वह साधु। और जो समाधान दे वह साधु।
- साधु को भजन के बदले कोई भी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए।
- शीलवंत होना यह साधु का लक्षण है।
- कोई साधु की नज़र से गिर जाने जैसा जगत में कोई नुकसान नहीं है।
- सद्गुरु वह है जो हमारे में प्रेम की पीड़ा प्रगट करे।
- सद्गुरु कभी सांप्रदायिक नहीं होता।
- धर्मांतरित किये बिना प्रेम करे वह गुरु।
- आश्रय करना हो तो समर्थ का करना, असमर्थ का नहीं।
- बुद्धपुरुष की सभी ऊर्जा पादुका में संगृहित होती है।
- आंखें बंद करनी यह विश्वास है, आंखें खोलनी यह विचार है।
- कई बार जीवन में आये हुए दुःख हमें ईश्वर सम्मुख कर देते हैं।
- विशेषण से अधिक विशेष क्षण महत्त्व की है।
- निंदा, द्वेष और ईर्ष्या हमारी मानसिक पीड़ा है।
- बगैर समर्पण और बगैर स्मरण का सर्जन विधुर है।

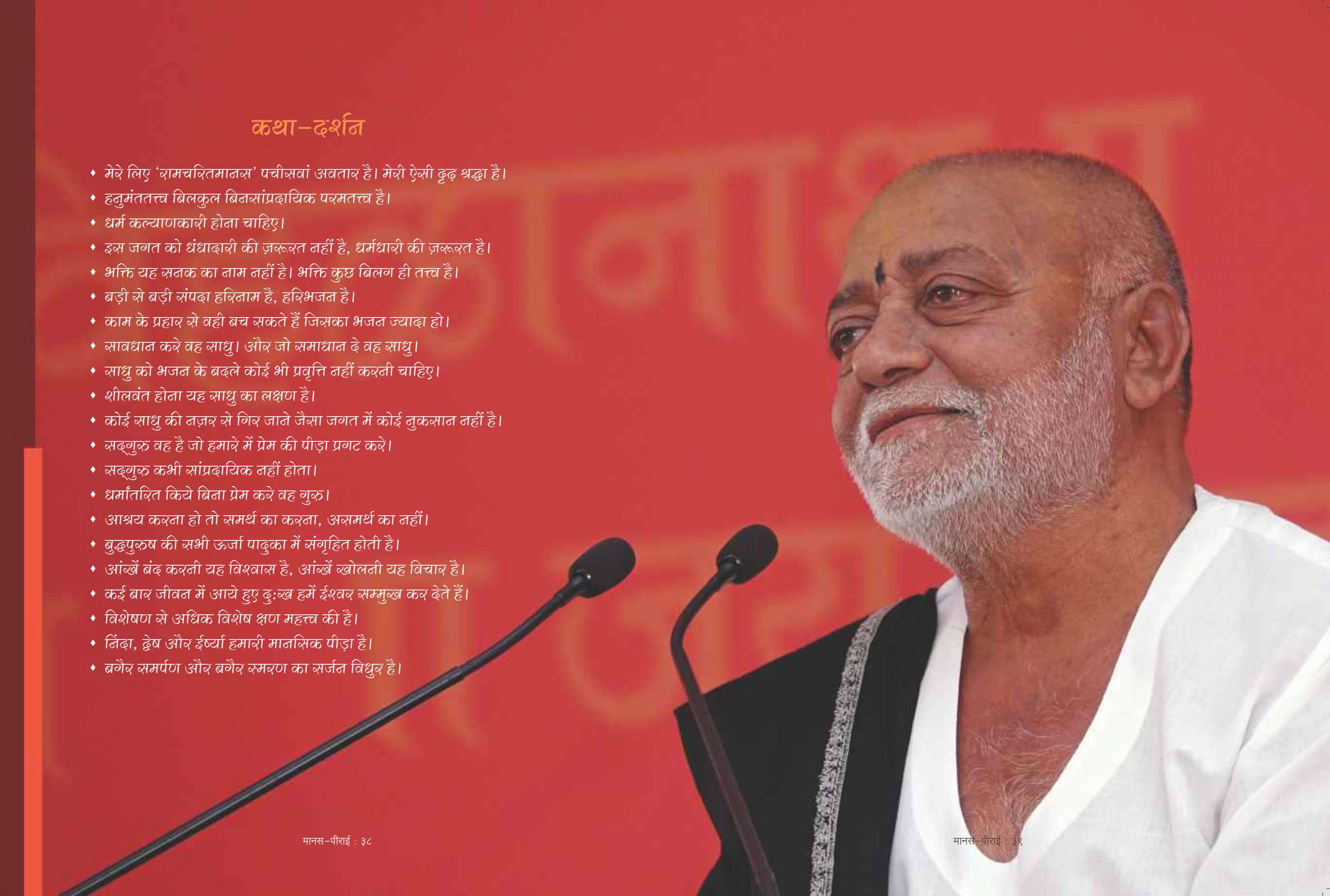

मानस-पीराई : ६

परम अव्यवस्था का नाम परमात्मा है

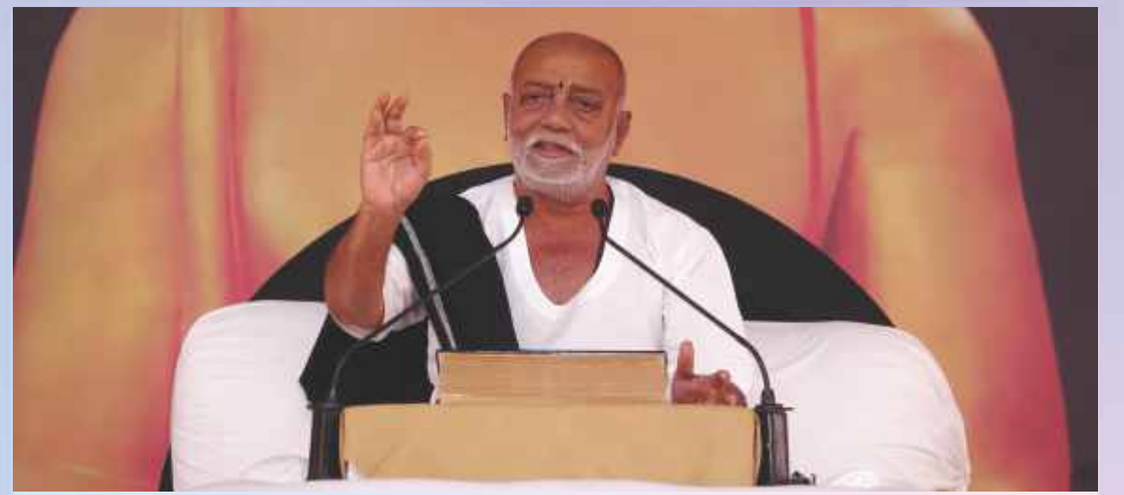

'मानस-पीराई', जिसका संवादी सत्संग चल रहा है। उसमें कुछ आगे बढ़ें उससे पहले गतकल विसामणबापू का प्रागट्य दिवस था; राम का प्रागट्य उत्सव हमने कथा में मनाया। पूज्य निर्मला माँ के सभी सेवकों के अति आदर के कारण रजततुला हुई। मैंने ही कहा कि माँ, अब सभी लोगों का भाव है तो रख लीजिए; एक अहोभाव समाज ने व्यक्त किया। हम को तो साधना कर करके, बंदगी कर करके ये सब संभालना है; उसकी रखवाली करनी है। उसमें वृद्धि न हो तो कोई बात नहीं, उसमें कहीं कमी न हो जाये उसका सभी गद्दीपतियों को ध्यान रखना चाहिए। ये बहुत ही जवाबदारी है साहब! अब तक परमात्मा ने सब संभाले रखा है। अपने सभी स्थानों पर, अपनी पीठों में, अपने मठों में ये बचा हुआ है। परंतु कलि प्रभाव बढ़ता जा रहा है तब वर्तमान धर्मजगत को बहुत सावधान रहकर इसको संभालना है बाप! क्योंकि हजारों नहीं, लाखों लोगों की श्रद्धा ऐसे स्थानों की ओर केवल विश्वासपूर्वक दौड़ रही है। मैं अभी गाड़ी में बैठा था। भईलुभाई मुझसे कहे कि बापू, किसी का फोन आया कि पांच सौ मन अदरक भेज रहे हैं। भईलुभाई बोले, इतनी अदरक का हम क्या करेंगे? और फिर कोई नाम देने के लिए तैयार नहीं है! ये सब कैसे आता है? समुद्र नदियों को बुलाता नहीं तो भी समुद्र की क्षमता नदियों को मज़बूर करती हैं उसके पास जाने के लिए। ये सभी स्थान श्रद्धा, मूल में पड़ी 'रामायण' की चौपाईयों और मूल पुरुष तथा पूरी परंपरा के लिए भजन के कारण अभी भी तप रहा है। इसलिए ये सब दौड़े आता हैं।

मैं तो रामगुण गाने आया हूं। किसी को सीख या सलाह देने नहीं आया। पर जब इतनी श्रद्धा रखते हैं व्यासपीठ की खातिर तब स्थानों को भी वस्तु का ध्यान रखना चाहिए और ये हो रहा है। भूल न जाएं इसलिए बातें कर रहा हूं। एक छोटे-से छोटे मनुष्य की तरफ ममता रखनी चाहिए। और ये है। इन स्थानों ने छोटे-से आदमी को भी ममता दी है। ममता रखते हैं। पर ऐसे स्थानों ने समता भी रखी है कि हिन्दू, मुसलमान, शीख, इसाई, छोटा आदमी, बड़ा आदमी, धनी, गरीब इन सब की तरफ समता। और सेवा करने कोई भी अपने धर्मस्थानों में आये तो उसकी सेवा उसकी क्षमता के अनुसार स्वीकार करनी चाहिए। उसको मज़बूर न करना चाहिए। तेरे पास सौ रूपया है तो तू दस ही दे, तेरा दसवां भाग निकल गया। ऐसी क्षमता अनुसार सेवा लेनी चाहिए। धर्मस्थानों में चार चरण धर्मों के, अभी अपने यहां सलामत हैं इसका मेरी व्यासपीठ को आनंद है।

पीराणुं किसको कहेंगे? पीर तो सब को होना है यार! किसको पीर न होना होगा? पर पीर और पीराणुं उसको कहेंगे जिसके पास वो सात का अंक हो। सात के अंक का अर्थ ये है कि जिसके पास समझ की सातों भूमिका है। जैसे शास्त्रों में ज्ञान की सात भूमिका है। मुझको हर जगह आनंद ही होता है, पर यहां एक विशेष आनंद ये है, मैंने पहले दिन कहा कि यहां शूरवीरता और साधुता का संयोग है। क्षत्रिय लोग हैं इसके मूल में और फिर भी साधुपन है। अर्थात् साधुता और शूरवीरता दोनों का संगम है। शूरवीरता कम हो जाये तो भी मुश्किल है। ये जुगपद निर्वाह है। क्षत्रियों में अमुक मूल्य होते हैं। वे जिस क्षेत्र में उतरते हैं उसको पूरा करके दिखाते हैं। वे यदि साधुता में उतरें तो कर

दिखाएंगे। यहां ये जुगपद निर्वाह हुआ है। यहां विसामण और 'रामायण' दोनों का मिलन हुआ है। ये जुगपद निर्वाह है। इसीलिए समझदारी की सात सीढ़ी। वैसे तो हम सब के लिए उपयोगी है; ये ज्ञान की तो बहुत गहरी कठिन बातें हैं। पर मुझको भी समझ में नहीं आती और समझे बिना आपको समझाने की कोशिश करें तो वो सब केवल वाणीविलास है। हमें उसमें बहुत जाना भी नहीं है।

तो पीराणुं कौन? जिसमें समझदारी की सात भूमिका है। और फिर आठ। पीराणुं कौन है? जिसे खुद ख़बर न हो इस तरह मूल पुरुष की कृपा से अंदर अष्टांग को साधा हो, योग के आठोंआठ अंग। साधक को पता न हो और अंदर ये सब चलता हो। एक भाई ने चिठ्ठी लिखी थी कि बापू, आप अनुलोम-विलोम करते हैं? ये योग में आता है न सब। ये करने जैसा है पर मैं नहीं करता। मुझे ये रास नहीं आता पर मैं अपनी रामकथा का मंगलाचरण करता हूं उसमें मेरा अनुलोम-विलोम आ जाता है। हम बोलते हो, काम करते हो, सो गये हो तो भी नाडियां चलती होती हैं साहब! श्वास चलता रहता है। हमें करना नहीं पड़ता। वैसे यम का अर्थ है कि अमुक वस्तु में हम ओतप्रोत हो जाएं तब हमें पता नहीं चलता। कोई भी गायक, कोई भी वक्ता, कोई भी क्षेत्र की विद्या प्रस्तुत करते हैं उसे यम करना नहीं पड़ता। उसका यम ओटोमेटिक होता है, उसे पता ही नहीं चलता। ऐसा संयम आ जाता है। जवाबदार व्यक्ति जैसा-तैसा नहीं बोल सकता। उसका संयम आता है, उसका यम आता है। समयानुसार कहां कितना बोलना चाहिए इसकी ख़बर उसे पड़ती है। नियम; नियम अर्थात् मुझको इतना ही कहना है कि किसी का अड़चन न बने वो नियम। अपनी जगह पर कोई बैठ गया हो तो हम दूसरी जगह बैठ जायें, पर उसके सामने आंखें न दिखाएं कि गतकल मैं वहां बैठा था! नहीं, इतना नियम रखना कि अड़चन न बने। बस, यम, नियम, आसन; आप एक बैठक में बैठे हैं। मैं एक बैठक में बैठा हूं। आसन भी अपने आप आ जाता है। जिस तरह का अपना आसन हो। बोलना, गाना, श्रवण करना। उसमें भी आप बोले तो आप तालियां बजाते हैं, कीर्तन करते हैं उसमें भी प्राणायाम हो जाता है। पता नहीं चलता है। और प्रत्याहार का अर्थ होता है जैसे गाय झुंड में जाये और सांझ होने पर सभी गायें वापस अपनी-अपनी गवादनिका में आकर खड़ी रहती हैं। आपकी इन्द्रियां जो बहिर्मुख होती हैं वो भगवान की कथा में जाते हैं तब सब का प्रत्याहार होने लगता है। अमुक समय तक भूल जाते हैं कि हम कहां हैं और क्या है? ध्यान; वक्ता ध्यानस्थ भाव में बोलता है। श्रोता ध्यानस्थ भाव में सुनता है उसका ध्यान है। और इसी तरह जीयें अर्थात् उपाधि ही नहीं, वो समाधि है। आये तो भी समाधि, बैठे तो भी समाधि; शंकराचार्य कहते हैं, फिर सो जाये तो भी समाधि है। 'निद्रा समाधि स्थिति।'

समझदारी की सात सीढ़ी जो चढ़ता है, वो व्यक्ति हो; परिवार हो; धर्मस्थान हो; समाज हो; राष्ट्र हो; विश्व हो। समाज की सात सीढ़ी का सत्ता जिसमें है। सहज सध जानेवाला आठ प्रकार का योग है। और भारतीय दर्शन छः है। षट्दर्शन, छः प्रकार के दर्शन हैं। हम शास्त्र पढ़ने नहीं गए। हमें पता नहीं चलता इस प्रकार कभी गांव के मनुष्य की बातों से भी छः दर्शन निकलते हैं। तब ऐसा लगता है कि छहोछह दर्शन इसकी अपनी मूल भाषा में आ रहे हैं। छः दर्शन, षट्दर्शन। ये सात, आठ और छः जिसमें आते हैं वो पीराणुं है; वो पीराई है। इसीलिए तो पीराणा के साथ लगा हुआ ७८६ का अंक है। ऐसी पीराई से भरी हुई पाळियाद की जगह पर ७८६ वीं कथा गाने का तलगाजरडा को मौका मिला है उसकी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। इसका आनंद है साहब!

मैंने कल कहा था कि मुझे सावरकुंडलावाले गुणवंतबापू ने 'भगवद्गोमंडल' में से निकालकर और झेरोक्ष करके भेजा कि 'पीर' और 'पीराई' के 'भगवद्गोमंडल' में जो अर्थ हैं। पीर अर्थात् पीर और आई यानी हम सब माँ को भी आई कहते हैं। पीर से जब पीराई बनता है। वह आदमी बड़ा है उस पर से फिर बड़ाई बनता है। नमणा, फिर नमणाई। पीठ-पीठाई। ये सब शब्द अपने यहां हैं। 'पीराई' शब्द है और उसका अपभ्रंश हो गया पीलाई। पीलाई होना। हम नहीं कहते हैं कि गन्ने की पीलाई हो रही है उसके बाड़े में। अर्थात् पीराई का अपभ्रंश है पीलाई। किसी बुद्धपुरुष के चरण में पिघल जाना, रसरूप हो जाना उसका नाम पीराई है। पीलाई हो जाना, अपना अस्तित्व मिटा देना। असंगता आ जाती है। निर्मला माँ मुझको रोज चिठ्ठी देती हैं कि यहां स्वयंसेवकों की शिस्त बड़ी स्नेहील है। मैं आनंदित हूं कि कोई भी स्वयंसेवक चिल्लाता नहीं है। कोई किसी का अपमान नहीं करता। विनय से कहते हैं। व्यवस्था वैसे तो सभी जगह अच्छी ही होती है, पर यहां एक कारण यह है कि व्यवस्था में क्षत्रिय ठाट-बाट है। उसका विवेक होता है। और क्षत्रिय का लड़का विवेक न रखे और मर्यादा न रखे तो साधु की आंख से उतर जाएगा! और किसी साधु की आंख से उतर जाना उसके जैसा नुकसान कोई नहीं है। तुरंत ही कीमत हो जाती है। घराने की लाज होती है। वो यहां बखानी जाती है। उसका मुझे आनंद है।

पीराई अर्थात् पीलाई। ये ग्राम्य भाषा में पीलाई होना, रसरूप हो जाना है। इसीलिए कथा सुननी चाहिए।

समझ न आये तो भी चिंता नहीं। आचरण न हो तो भी चिंता नहीं। बोलनेवाले ने कहां आचरण किया है? किए हो वो बड़भागी हैं। बाकी सुन लीजिए। सुनने की महिमा है बाप! आपको कोई कहे कि कुछ करते तो नहीं! भले कुछ नहीं करते। सुनो कथा। ये शास्त्र की बातें हैं। तो अपनी चर्चा चल रही है कि सुनना। ये श्लोक से लोक तक कही हुई एक सूत्रीय बात है। वेद से महान कोई नहीं। और वेद का भी जो छोर कहा जाता है वो वेदान्त कहलाता है। और वो वेदांत भी श्रवण, मनन और निदिध्यासन तक ले जाता है तब पहले श्रवण से ही शुरूआत करता है। फिर हम 'भागवत' में जायें तो भगवान व्यासमुनि कहते हैं, 'श्रवणं कीर्तनं विष्णु स्मरणं', श्रवण की ही बात आती है। फिर गोस्वामी के 'रामचरितमानस' में तो पुनः तुलसी कहते हैं, 'जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना।' सुनिए, सुनिए, सुनिए। और आगे चलकर गुरुनानक तक तो नानक कहते हैं, 'सुणीये दुःख पाप का नासू।'

अब 'भगवद्गोमंडल' में जो पीर विषयक अर्थ हैं उन्हें केवल आपको कहते चलूं। पीर का एक अर्थ होता है अमीर और उमराव। जो अमीर-उमराव होते हैं वे पीर कहलाते हैं। पर फिर पीर जैसा अमीर-उमराव किसको कहते हैं, उसकी फिर वापस व्याख्या करनी पड़ेगी। किसी भी अमीर-उमराव को पीर नहीं कहते। पीर का एक अर्थ है गुरु, धर्मगुरु और परलोक काहमें रास्ता दिखानेवाला। पीर का एक अर्थ होता है वृद्ध मनुष्य। वयोवृद्ध मनुष्य भी पीर कहलाता है। पीर यानी देवत्व पाया कोई मुसलमान संत। किसी भी धर्म का कोई भी संत जिसने पीरत्व प्राप्त किया है वो पीर है। वली को भी पीर कहेंगे। मुसलमान औलिया उसे भी पीर कहेंगे। मुसलमानों में पवित्र मानेजानेवाला पुरुष उसे भी पीर कहेंगे। और कोई औलिया, भजन-बंदगी करते-करते चला गया हो उसको भी हम पीर कहते हैं। पीर का एक अर्थ है पवित्र मनुष्य। गांव में कोई किसान क्यों न हो? पवित्र मनुष्य को पीर कहा है। पीर का एक अर्थ है साधु। माता को भी पीर कहा है और बाप को भी पीर कहा है। पीर का एक अर्थ है प्रभु अथवा तो परमात्मा। पीर का एक अर्थ है महात्मा। किसी भी महात्मा को पीर कहा है। और एक सिद्ध पुरुष को पीर कहा है। मुसलमान समाज के सातवें माह का दूसरा वार, सोमवार उसको पीरवार कहते हैं। पीर एक जाति और प्रकार को भी कहते हैं। पीर यानी पीड़ा, दर्द, दुःख, व्याधि। दूसरे के कष्ट को पीड़ा को देखकर जो दुःखी होता है ऐसा करुणावान व्यक्ति, हमदर्दी व्यक्ति, संवेदनशील व्यक्ति भी पीर कहलाता है। पीर का एक अर्थ 'भगवद्गोमंडल' ने किया है लड़की का पीहर अथवा तो मायका वो भी पीर है। और पुत्री के लिए तो पीर उसका पीहर ही होगा न साहब! इसका मतलब ससुराल खराब नहीं। ससुराल अलग वस्तु है। वो उसका तीरथ है। ससुराल तीरथ, पीहर पीर। ये इसमें लिखा नहीं है। मैंने कहा है। ससुराल तीरथ है। तीरथ की लाज मर्यादा रखनी चाहिए। तीरथ की स्वच्छता रखनी चाहिए। तीरथ की पवित्रता रखनी चाहिए। पीर का एक अर्थ है आंख, नेत्र, चक्षु; उसको भी पीर कहेंगे। पीर का एक अर्थ है जगदंबा, देवी, माता। दुर्गा को भी पीर कहेंगे। कितना बड़ा विशाल अर्थ है इस पीर का! पिता की माँ, दादी अथवा अपनी डाडी कहते हैं अथवा बड़ी माँ कहते हैं। काठी समाज में लोग बड़ी माँ को आई कहते हैं।

पीर का एक अर्थ है मौत, मृत्यु अथवा तो मरण। और ये वेद के अनुकूल वस्तु है। पीर अर्थात गुरु और ऋग्वेद कहता है, गुरु मृत्यु है। अर्थात् वेद का श्लोक और ये लोक अर्थ मिल जाते हैं। पीर यानी हमारी मृत्यु। हां अपने को खत्म कर डालती है! अपना पीर हमारे अहंकार को चकनाचूर कर देता है साहब! हमारा मन नहीं रहने देता, हमारी बुद्धि नहीं रहने देता, हमारे चित्त को नहीं रहने देता, हमारे अहंकार को पीस डालता है फिर भी हमें जीवित रखे हैं वो हमारा पीर, अपना गुरु है। गुरु ये मृत्यु है। ओशो की एक प्रवचन सिरीज़ चल रही थी, वो आचार्य रजनीश थे तब 'मैं मृत्यु सिखाता हूं।' अर्थात् पीर यानी मृत्यु, मौत, मरण। अब बहुत अच्छा पीर का अर्थ आया है। यह मुझको बहुत पसंद है इसलिए कहता हूं। आप को भी अच्छा लगेगा। पीर का एक अर्थ लिखा है, सासु। ओहोहो! सासु को पीर कहा! क्या उदारता है शब्दकोश की! हां, स्त्रीलिंग पीर हैं यहां। अमुक पुलिंग पीर हैं। पीर से संबंधित कितने सारे शब्द हैं! पीरतन; पीरतन मानी स्त्रीवाचक नाम बताया शब्दकोश ने। पीरपना उसे पीरतन कहेंगे। किन्नर के लिए प्रयोग होनेवाला एक शब्द है। और पीरमर्द अर्थात् पुराना जोगी। पीर यानी मुर्शिद। गुरु, महात्मा, पूजनीय अथवा तो अपने से बहुत बड़ा व्यक्ति, फिर वो राजा हो या कोई भी हो, साधु चरित्र हो तो उसे पीर मुर्शिद कहेंगे। पीरशाह। पीराणापंथी; उस मतानुसार चलनेवाला, पीराणा पंथ में चलता हो वो। पीराणी काठियावाडी घोड़ी की एक जात है ऐसा शब्दकोश में लिखा है। एक अश्व का नाम है। 'पीरान' शब्द है ये वृद्ध ऋषिमुनिओं के लिए प्रयुक्त शब्द है। पीरान पीर यानी देवों का देव। पीरों का पीर। फिर रंगवाचक नाम आये हैं। पीरी अर्थात् पीला रंग। पीर अर्थात् कमला। पीर अर्थात् इज़ारा। पीर यानी प्रौढ़ अवस्था। पीर यानी चमत्कार। न समझ आये ऐसी घटना को पीर कहा है। उसके सामने पीर अर्थात् चालाकी, धूर्तता। जिसमें लुच्चाई हो वो। पीर अर्थात् चेला मुंडने का धंधा, ऐसा इसमें लिखा है बाप! एकदम साफ़ लिखा है।

पीर अर्थात् जबरदस्ती चेला मुंडने का धंधा उसको पीर कहेंगे! पकड़-पकड़ के जो जबरदस्ती जो भी दीक्षा देते हैं। बहुत से दीक्षा में न उम्र देखते हैं, न अवस्था देखते हैं, न उसकी रुचि देखते हैं! अपने ग्रूप को बड़ा करने के लिए किसी को भी मुंडो, मुंडो, मुंडो! इसमें लिखा है! धार्मिक फ़र्ज़ों को भी पीराई कहा है। सत्ता और हुकूमत को भी 'पीर' शब्द और 'पीराई' शब्द लगा है। और नखशिख साधुपने को भी पीर कहा है।

'मानस-पीराई', इस पीराई की हम संवादी चर्चा कर रहे हैं 'मानस' के आधार पर तब इस तरह। अब एकेडेमिक पूरा हुआ, अब इधर-उधर का शुरू हुआ! मैंने कहा है, परम अव्यवस्था का नाम परमात्मा है। यह मेरी दृढ़ श्रद्धा है। इसके विपक्ष में बहुत बौद्धिक चर्चाएं भी होती हैं। और वर्षों से कितने इन्सान आध्यात्मिक क्षेत्रों में हैं वे कहते हैं कि सब समझ में आता है बापू, पर ये परम अव्यवस्था का नाम परमात्मा अभी भी समझ में नहीं आता! नहीं समझ में आये तो कोई बात नहीं। मुझको समझ में आ गया है मेरे गुरु की कृपा से। परम अव्यवस्था का नाम परमात्मा है। ये अंधाधुंध सरकार है। वही परमतत्त्व है। साक्षीतत्त्व है। वो किसी नियम में नहीं है। बस, ईश्वर की ख़बर ही नहीं पड़ती है साहब! वो प्रतिज्ञा करता है, प्रतिज्ञा तोड़ता है। इसमें व्यवस्था कहां हैं? वो जगत का बाप भी है और घोड़ी की लगाम भी पकड़ता है। एक ही बार केवल कृष्ण नीचे नहीं उतरे, बाकी रोज जैसे ही युद्ध पूरा होता कि सारथि नीचे उतरता और फिर अर्जुन से कहते, आइए नीचे। ये अव्यवस्था नहीं है? जगतपिता है कृष्ण और अर्जुन उसकी शिबिर में घायल हुआ हो, मरह पट्टी हुई हो, और यशोदा का बेटा घोड़ों को चना खिलाता हो! घोड़ों को किसी की अचानक तीर लग गई हो, उसमें औषधि लगा रहा हो, भस्म लगा रहा हो! ये सब अव्यवस्था है साहब! उसका जीता जागता दृष्टांत है। पर एक वस्तु फिर कहूंगा, कृष्ण जगत कल्याण के लिए कभी असत्य बोले हैं पर किसी दिन निरर्थक नहीं बोले, मिथ्या नहीं बोले हैं। उसके पीछे कोई न कोई अर्थ रहा है। जगत का मंगल रहा है। तो मूल में कोई अव्यवस्थित तत्त्व पड़ा है। जिसको हम समझ नहीं सकते कि आकार है या निराकार? वो व्यक्ति है या व्यापक है? वो नामरूप है या नामरूप नहीं है? ख़बर नहीं पड़ती? साहब! समझ आयेगा, अवश्य समझ आयेगा; नहीं समझ आये ऐसा नहीं है। वो जनाएगा तो जाना जाएगा। और प्रेम हो अथवा तो तखतदान कह गया-

गोतवा जाव तो मळे नहीं गोत्यो गहन गोविंदो रे।

गहन में गहन गोविंद है। गुह्य में गुह्य तत्त्व परमात्मा, खोजने जाएं तो नहीं मिलता।

हरिभगतुंने हाथवगो छे प्रेमनो परखंदो रे।
मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं, मोजमां रे'वुं रे,
अगम, अगोचर, अलखधणीनी खोजमां रे'वुं रे।

कोई व्यवस्था ही नहीं है इस अदृष्ट में! कभी मछली बनता है, कभी कछुआ। कभी वराह बनता है कभी नृसिंह! कभी आधा मनुष्य, आधा पशु बनता है! कभी बिलकुल बौना बनता है, फिर दूसरे ही मिनट इतना बड़ा और विराट बनकर खड़ा हो जाता है! कभी अतिशय रूपवान-'लोकाभिरामं रणरंगधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।' रामरूप में आकर खड़ा रहता है और कभी समस्त जगत को एक स्मित देकर पूरे संसार के दर्द को नष्ट करके खड़ा होता है। ऐसा यशोदानंदन कृष्ण, सब कुछ मधुर, ऐसा बनकर आता है। आज दिला ने मुझे राजेश रेड्डी का एक शे'र दिया है-

सोचिए अब इतने चारागार कहां से आयेंगे?
मुस्कुराकर अपने कुछ बीमार कम कर दीजिए।

हे गोविंद, थोड़ा हंसकर बीमार ही कम कर दो, नहीं तो हम इतने अधिक डोक्टर कहां से लायेंगे? त्रिभुवनमोहित जिसकी स्मित है, वही आदमी स्नान कर रही गोपियों के वस्त्र भी लेता है और वही आदमी द्वारका की मिल से कपड़ा निकल रहा हो और इधर द्रौपदी ढंक जाती हो। कुछ निश्चित नहीं साहब! ऐसा कृष्ण बनकर आता है। जिसने अवधूती ओढ़ ली है उसकी अपने को कहां ख़बर पड़ती है? उसे खोजने जाते हैं तो वो मिलता नहीं है! तो परमतत्त्व जो है उसमें व्यवस्था नहीं है। और आज हो रहे ऐसे जगमंगल के आयोजनों में यदि व्यवस्था दिखती है तो कोई अव्यवस्थित साधना, अवधूती साधना, रूखड़ी साधना करता होगा ऐसी किसी अव्यवस्था का आशीर्वाद होता है। जिससे ये सब संभलता है।

पर पीड़ा को जाने वो पीर। इतने दिनों में हमने पीर के कुछ लक्षण देखे। यह मेरा आपके साथ का संवाद है, एक वार्तालाप है, उपदेश नहीं है। जो पूरा हो वो पीर कहलाता है। अपने प्राचीन भजनिकों ने कहा है कि पूरा हो उसके सामने हम गुहार लगाएं। जो अधूरा है उसके साथ दिल की बातें क्या करे? जो पूरा है; जो भरपूर है। और कबीरसाहब इसी टोन में बोले हैं कि ऐसे पूरे को मैंने पा लिया है जो पीर है। 'कह कबीर मैं पूरा पाया।' पूर्ण की प्राप्ति को पीर कहते हैं। ऐसा कोई श्रेष्ठ तत्त्व। संस्कृत में अति श्रेष्ठ तत्त्व पुंगव कहलाता है। उससे महान कोई नहीं है। व्यास आदि कवि पुंगव कहलाता है। उससे महान कोई नहीं है। व्यास आदि कवि वाल्मीकि। और इसीलिए अपने यहां कहा जाता है कि जगत में जो कोई भी बोलता है वो

व्यास का जूठा बोलता है। उसके परोसने का ढ़ंग अलग होगा। वो अपनी सामग्री बनाता जाता, उसका स्वाद स्वयं लेता जाता और दूसरे की तबियत के अनुसार उसको परोसता जाता। ये बात अलग है। जो पूरा हो वो पीर। हमें लगता है कि इसमें कुछ घटता नहीं है। अपनी आत्मा कहती है, आहाहाहा! इस साधुपुरुष को, इस फ़कीर को, इस संत को, इस औलिया को, इस महापुरुष को हम देखते हैं तब ऐसा लगे कि कुछ कम नहीं है, तो समझना चाहिए, ये पूरा लगता है। उसको पीर कहने में बाधा नहीं है।

पीर का दूसरा लक्षण; 'रामायण' में कौन पीर है? भगवान राम पूर्णब्रह्म हैं। 'रामायण' में पीर कौन? अखंड ब्रह्मचर्य की मूर्ति मेरा हनुमान। 'रामायण' में कौन पीर? मेरा महादेव। वो तत्त्व जिसको उपनिषदों ने 'पूर्णमदं पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते' कहकर पुकारा है। ऐसा कोई अगम तत्त्व पीर है जो पूर्ण है। जहां कुछ कम नहीं है। अब दूसरा लक्षण। हम किसी के भी आश्रित हो, किसी बुद्धपुरुष के आश्रय में हो, किसी परमतत्त्व के आश्रय में हो, किसी गुरु के आश्रय में हो अपने परम हित में हो ऐसे सभी हमारे मनोरथों को पूर्ण करता है वो पीर है। हमारे लिए परम हित में हो उन सभी मनोरथों को पूरा करता है वो पीर है। परंतु अपने कल्याण में न हो ऐसे मनोरथों को पीर पूरा नहीं करता। न करने का धंधा हम करते हैं और विहळानाथ को कहते हैं, पूरा कर दीजिए! तो विहळानाथ पूरा नहीं करेंगे। और इससे आपकी श्रद्धा ड़िग जाए तो आप धंधादारी हैं, आप धर्माचारी नहीं हैं। इस जगत को धंधादारी की जरूरत नहीं है, इस जगत को धर्मधारी की जरूरत है। 'धर्मधुरंधर' शब्द कहीं भी लग जाता है! 'धर्मधुरंधर' शब्द अपने यहां बहुत उज्वल शब्द है अवश्य। धर्मधारी ऐसा मनुष्य अपना परमहित जिसमें हैं उसे पूर्ण करता है।

हम जिनके चरण के आश्रित होते हैं,वो हमारे परम हित के मनोरथों को पूर्ण करता है। और हमें ऐसा लगता है, हमारा जितना हित था वह सब किया। कल्याण के लिए सभी मनोरथ थे वो पूर्ण कर दिए। यह एक 'रामायण' का पात्र है यात्रिकों को गंगा के इस किनारे से दूसरे किनारे उतारनेवाला निषाद; गरीब, दीन-हीन एक केवट। राम ने उसे कुछ दिया नहीं। कोई उतराई उसने ली नहीं। पर कितना मेरे राम ने उसे भर दिया! और वो कहता है कि आपने क्या नहीं दिया? जनम-जनम से मजूरी करता हूं पर कभी भरा नहीं। वह मजूरी किसीने पूरी न चुकाई पर हे रघुपुंगव राम, आपने आज दो मिनट में मेरी मजूरी पूरी कर दी, मुझको भर दिया। मेरे हित में, मेरे कल्याण में था वो सब आपने दे दिया आज। ड़कार आ गई साहब! कल एक गांव का आदमी मुझसे कह रहा था। मेरा स्नेही है। नाम नहीं देता हूं। पर ऐसा कहा कि बापू, किसी दिन कुछ नहीं मांगूंगा, आपसे कोई लाभ नहीं लूगा। मेरे घर जब अनुकूल हो तब आप आओ तो मुझे लगेगा, मुझे सब मिल गया। यह जो परितृप्ति है। यह जो मेरी और आपकी श्रद्धा है, इसकी महिमा है। अहल्या कहती है, मैं पतिता। समाज, पति, सोसायटी, देव, ऋषिमुनिओं, अरे ये घास के तिनके भी मुझको छोड़कर चले गये! आज मेरे घर राम आये और उन्होंने मुझे आज इतना सब दिया कि मेरी देहरूपी कलश में समा नहीं रहा है। आश्रित के सभी मनोरथ जो कल्याणकारी हो उसे पूरा करे उसका नाम पीर। अपनी तृष्णा बढ़ती जाये तो ये हमारी कमज़ोरी है।

निझामुद्दीन बैठे हैं। सायंकाल का समय है। लोबान का धूप किया फिर उनके नज़दीक में नज़दीक अंतरंग जो पेरा गया था गन्ने की तरह, रसरूप हो गया था, ऐसा अमीर आकर बैठता है। और आज मौज़ चढ़ी है पीरको, निझामुद्दीन औलिया को, इसलिए उसने कहा, अमीर, तू मांग ले मुझसे। गुरु से शिष्य ने पूछा, पीराई से भरे हुए पीर की व्याख्या कीजिए। तब तीसरा लक्षण, जिसको जगत में किसी दिन कभी कोई पापी न दिखे, उसका नाम पीर। सच्चा पीर ऐसा किसी दिन नहीं कहेगा कि ये पापी है, ये पुण्यशाली है। जिसको कोई पापी ही न दिखे उसका नाम पीर है। जो ऐसी पीराई पाया हो, उसको पापी दिखेगा ही नहीं। हमने विहळानाथ को देखा नहीं है पर जिस तरह से परंपरा चल रही है उससे तो मुझे लगता है कि इस महापुरुष को किसी दिन अधम दिखा ही नहीं होगा। दिखता तो अब तक चलता ही नहीं साहब! साम्राज्यों के साम्राज्य चले गए। पाश्चात्य संस्कृति का विलय हो गया। पर अभी भी अपने धर्मस्थान टिके हैं। क्योंकि उन्होंने किसी अधम, किसी तिरस्कृत, किसी अछूत, वंचितों से प्रेम किया होगा, उपेक्षितों से प्रेम किया होगा उन्हें पहले बुलाया। ये सब बड़ी बातें हैं। और धर्मस्थानों को और व्यासपीठों को ये करना पड़ेगा। नहीं तो अगली शताब्दी जो अभी चल रही है वो हमें माफ़ नहीं करेगी। कितना दायित्व बढ़ता जा रहा है अपना! हमें कोई अधम नहीं दिखना चाहिए। व्यवस्था कीजिए यह ठीक है कि आपने मोरारिबापू को यहां बैठाया, क्योंकि मुझे बोलना है। और आप वहां बैठे, क्योंकि आपको सुनना है। यहां दूसरा कोई बैठेगा तो मैं वहां बैठूंगा। ये तो व्यवस्था है। ये किसी का तिरस्कार नहीं है। व्यवस्था होनी चाहिए, अस्पृश्यता नहीं होनी चाहिए। अंतिम से अंतिम आदमी परछाना चाहिए। गांधी इसलिए महान हैं, विश्ववंद्य इसलिए कि वंचित तक ये आदमी गया। अंतिम आदमी तक ये आदमी गया। हमारे संत ये काम करते हैं। विहळानाथ की समस्त परंपरा में ऐसा भेद नहीं दिखा। जिसको कोई पापी न दिखे वो पीर है।

फिर गुरु से शिष्य पूछता है, ओर एकाध लक्षण बताइए कि आपकी दृष्टिसे पीराई से भरा हुआ पीर किसे कहेंगे? बुद्धिपूर्वक जो दूसरे पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है पर जहां जाता हे वहां अपने स्वभाव की सुगंध छोड़ जाता है उसका नाम पीर है। हम लोग तो नेटवर्क करते हैं प्रभाव डालने के लिए! वो तो स्वभाव से सुगंध फैलाता जाता है। वो पीर कहलाता है। आप लोबान का धूप करते हैं, गूगळ का धूप करते हैं, फिर पंखा नहीं करना पड़ता कि तू इस दिशाओं में जा। वो तो किसी भी दिशा में जाएगा, खुश्बू सभी दिशाओं में जाती है। सभी उसके अधिकारी है। हां, फूल के पौधे को एक क्यारी से दूसरी क्यारी में लगाओ पर अपने आंगन में रहे फूल पौधों को फूल खिलने पर उसकी खुश्बू को केवल अपने आंगन में नहीं रोक सकते। उसे गिरफ्तार नहीं कर सकते। प्रभाव डालने का जो प्रयत्न न करे वो पीर। और पीराई छूपी नहीं रह सकती साहब! वो किसी दिन छूपी नहीं रहती। वो बाहर आये बिना नहीं रहती। ये एक गुरु द्वारा दिया गया जवाब।

अब पांचवां जवाब। पीर किसे कहते हैं? तब उसने कहा, अपने मुर्शिद की जुतियों को अपना पीर समझना। सूफ़ी बात है। अपना जो गुरु है उसकी पादुका को पीर समझना चाहिए। ये लक्षण सूफ़ियों के हैं। अपने यहां बहुत महिमा है। अपने समाज में पादुका की बहुत बड़ी महिमा है। पादुका की एक खुश्बू होती है साहब! बुद्धपुरुष की सभी उर्जा पादुका में संग्रहित होती है साहब! पादुका का महत्त्व ये है। गुरु की पादुका हमें मिले तो उसे पादुका न समझना। 'रामायण' में कहते हैं, गुरु ने अपनी आंखें निकालकर तुम्हें दी हैं। और आंख का जतन करना हमारा फ़र्ज़ है। ऐसा लिखा है 'रामायण' में; इसीलिए कहता हूं कि भरत, मैं तूझे जो दो आंखें दे रहा हूं। पादुका तो निमित्त है। रघुवंश ने तो दो आंखें दी। इसका अर्थ ये है, गुरु हमें देखने की दृष्टि देता है। कोई बुद्धपुरुष, कोई पीर, जब पादुका देता है तब अपनी पूरी पीराई दे देता है। पर 'मानस' के आधार पर मुझे कहना है कि कोई गुरु जब पादुका देता है तब वो अपनी आंखें निकालकर देता है। पादुका का अर्थ व्यासपीठ को लगता है 'पा' का अर्थ होगा पारगत, प्रवीणता, कुशलता, कौशल्य। 'पा' मानी पारंगत। 'दु' मानी दुनिया, ये जगत। और 'का' मानी कार्य। दुनिया के कार्यों में हमें पारंगत बना दे उसका नाम पादुका है। पादुका क्या है? कुशल कर्म का प्रतीक है। सूफ़ी मत कहता है कि पीराई से भरे पीर का पांचवां लक्षण है पादुका। बहुत बड़ी महिमा है अपने यहां पादुका की। भरत को पादुका दी।

'मानस' के आधार पर 'मानस-पीराई' की थोड़ी चर्चा विहळानाथ के द्वार पर हम कर रहे हैं। गतकल हमनें भगवान राम के जन्म का उत्सव मनाया। कौशल्या ने पुत्र को जन्म दिया उसी तरह कैकेयी ने भी पुत्र को जन्म दिया और सुमित्रा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। चार पुत्रों की प्राप्ति होने पर राजभवन के और अयोध्या के आनंद की कोई सीमा न रही। एक महिना तक अयोध्या में उत्सव और बधाईयां चली। लोगों को ऐसा ही लगता है कि रात होती ही नहीं। चौबीस घंटे लोगों भाव में डूबे हैं। कविता की भाषा में तुलसी ने लिखा है कि एक महिने का दिवस हुआ। रात हुई ही नहीं। ये कविता की भाषा है। एक महिना तक सूरज डूबा ही न हो और रात पड़ी ही न हो यह बुद्धि से स्वीकार करना कठिन है। पर कविता का सत्य है। और वैसे भावजगत में देखे तो मेरा अनुभव तो ऐसा है। आप का क्या है? आपको नहीं लगता कि ख़बर नहीं पड़ी कि छठ्ठा दिन पूरा होने आया! आज राम प्रत्यक्ष नहीं है उनकी रामकथा का गाना गा रहे हैं तो भी ख़बर नहीं पड़ रही कि नव दिन कैसे गया तो मेरा राघव स्वयं अवतरित हुआ होगा तब एक महिना कैसे बीत गया यह कदाचित अयोध्या को न पता न चला हो तो कोई आश्चर्य की आवश्यकता नहीं। ऐसा होता है। मेरे तो छांसठ वर्ष कहां गए वही ख़बर नहीं पड़ती राम को गाते गाते!

तीन दिन के बाद मैं जाऊंगा। अर्थात् बावा इधर जाये और बीड़ी तथा गुटका...! तीन दिन बाद रविवार को ऐसा होनेवाला है! वो भाईसा'ब छोड़ देनेवाला है उसको मैंने कहा, मैं आपको छोड़ने के लिए नहीं कहता। किसी के कहने से मत छोड़ना। एक पीते हो तो आधी कर देना। धीरेधीरे, हौलेहौले कीजिएगा, जल्दबाजी नहीं करना है।

परम अव्यवस्था का नाम परमात्मा है। ये मेरी दृढ़ श्रद्धा है। इसके विपक्ष में बहुत-सी बौद्धिक चर्चाएं भी होती है। और वर्षों से कितने लोग आध्यात्मिक क्षेत्र में हैं वो कहते हैं कि सब समझ में आता है बापू, पर ये परम अव्यवस्था का नाम परमात्मा, अभी भी समझ में नहीं आता! न समझ आये तो कोई बात नहीं। मुझको समझ में आ गया है मेरे गुरु की कृपा से। परम अव्यवस्था का नाम परमात्मा है। ये अंधाधूंध सरकार है। ये ही परमतत्त्व है। साक्षीतत्त्व है। वो किसी नियम में नहीं है। वो प्रतिज्ञा करे; प्रतीक्षा तोड़े। इसमें व्यवस्था कहां है? वो जगत का बाप भी है और घोड़ी की लगाम भी पकड़ता है। ये अव्यवस्था नहीं है?

बहुत से आदमी कहते हैं, हम दूसरा कुछ नहीं पीते, हम खाली ऐसे पी लेते हैं! कभी-कभी तुलसी का पत्ता डालकर पीते हैं, लो! अब तो हुक्काबार चलते हैं बड़े-बड़े नगरों में! और ये पढ़े-लिखें लड़के, पैसेदारों के लड़के हुक्काबार में बैठे-बैठे! थोड़ा ध्यान रखिएगा अपनी संस्कृति का। खूब पढ़ो बाप! कौन-सा साधु होगा जो आप का धन, आपका मान, आपकी प्रगति, आपकी प्रतिष्ठा देखकर प्रसन्न न होगा? सब प्रसन्न होंगे। फिर भी मूल्यों की रक्षा करना बाप! ये खूब जरूरी है। मूल्य संभलने चाहिए। आप कपाल में तिलक न करे तो कोई चिंता नहीं। आप माला न रखें तो कोई चिंता नहीं। आप धोती न पहने तो कोई आग्रह नहीं। पर अपनी समझ बनी रहनी चाहिए कि हम हिंदुस्तान के हैं। सवाल मूल्यों का है। तिलक करेंगे तो अच्छा लगेगा पर हम किसी को तिलक देते नहीं है कि आप तिलक कीजिए। जबरदस्ती किसी से तिलक न कराना चाहिए। व्यासपीठ ऐसा नहीं कहती कि माला रखें। रखें तो अच्छा है । तिलक कीजिए। कोई वस्तु नहीं कहनी है। आप जैसे हैं वैसे रहे। पर इस देश के मूल्य है। इस देश की सभ्यता है।

ज्ञान का सूरज जहां उगा हो वहां रात नहीं पड़ती साहब! तो मानो एक महिने का दिवस हुआ ऐसा भासित हुआ; अयोध्या के अस्तित्व की ये रचना थी। नामकरण संस्कार का समय हुआ। भगवान वशिष्ठजी बैठे हैं, दशरथजी ने कहा, अपने अंत:करण की प्रवृत्ति अनुसार मेरे चारों कुंवर का नामरण कीजिए। 'राजन्, कौशल्या की गोद में खेल रहा यह अनुपम तत्त्व, जो आनंद का सिंधु है, सुख की खान है, जिसका नाम लेने से जगत को आराम, विराम और विश्राम की प्राप्ति होती है, इसलिए इसका नाम मैं राम रखता हूं।' और फिर वशिष्ठजी बोले, 'राम के जैसा ही वर्ण, राम के जैसा ही चेहरा, राम के जैसा ही शील और राम के जैसा ही स्वभाव इस कैकेयी के बालक में हैं। यह जगत को भर देगा। किसी का शोषण नहीं करेगा। सब का पोषण करेगा। सब को भरेगा इसलिए इसका नाम मैं भरत रखता हूं।' सुमित्रा के दो बालक। 'जिसका नाम लेने से शत्रु की बुद्धि मित्रता में बदल जाएगी, दुश्मनों का नाश होगा, शत्रुता का नाश होगा, वैर का नाश होगा ऐसे इस बालक का नाम मैं शत्रुघ्न रखता हूं। और अंत में लक्ष्णों के धाम, राम के प्रिय पात्र बहुत उदार तत्त्व ऐसे सुमित्रा के बालक का नाम मैं लक्ष्मण रखता हूं।' वशिष्ठजी बोले हैं, जगत की दृष्टि से ये चार आपके पुत्र हैं पर मेरी दृष्टि से आध्यात्मिक दृष्टि से ये वेदों के चार सूत्र हैं।

ये चारों राजकुमार वेदों के सार हैं, वेदों के सूत्र हैं। इस प्रसंग पर मैं हमेशा कथा में अपना दृढ़ करने और आप तक बात पहुंचाने के लिए संवाद में कहता रहता हूं कि यदि रामनाम रटते हो, राम महामंत्र का यदि जप करते हो तो उसके पीछे जो तीन नाम हैं इसका बराबर पालन करना चाहिए। रामनाम जपनेवाले को रामनाम के आधार पर, धर्म के आधार पर समाज का शोषण नहीं करना चाहिए, पोषण करना चाहिए। ये दूसरा बहुत महत्त्व का नाम साथ जोड़ना चाहिए। दुनिया में दूसरे आपके साथ दुश्मनी करे, पर हम रामनाम जपते हो तो हमें किसी के साथ शत्रुता नहीं रखनी चाहिए। लक्ष्मण तो बहुत उदार हैं, समस्त जगत के आधार हैं शेषनारायण के रूप में। हम समस्त जगत का सहारा तो नहीं बन सकते, समस्त जगत में हम बरसात न कर सके परंतु अपने घर में जितने पौधे हो, गमले हो उसमें तो पानी हम सींच सकते हैं। मैं और आप भी हम जितने की मदद कर सकते हैं, उतने का आधार बने। तो रामनाम लेता हो उसे किसी का शोषण नहीं करना चाहिए। रामनाम लेता हो उसे किसी के साथ शत्रुता नहीं रखनी चाहिए। और रामनाम रटता हो उसको अपनी क्षमता के अनुसार दूसरे का सहारा बनना चाहिए। इन चारों नामों का अर्थ है। हम अन्नक्षेत्र न खोल सके तो कभी सुविधा हो तब परोसने तो जा ही सकते हैं। सुविधा हो तो पांच किलो चावल तो वहां डाल सकते हैं। क्षमता के अनुसार अन्य का सहारा बनना चाहिए। हम बहुत बड़ी शाला-कालेज नहीं बना सकते पर किसी तेजस्वी विद्यार्थी, गरीब का बालक फ़ीस बिना अपनी उच्च शिक्षा से वंचित हो जाता हो तो उसकी फ़ीस भर दें। उस दिन हमारा रामनाम लेना सार्थक हो जाएगा। हम बड़ी-बड़ी होस्पिटल नहीं बना सकते हैं। जो बनाते हैं वे प्रणम्य हैं। पर किसी गरीब को छोटी-बड़ी दवा दे सके। हम जितना हो उतना दूसरे को आधार दे सकते हैं।

तो रामनाम लेता हो उसको किसीका शोषण नहीं करना चाहिए, पोषण करना चाहिए। रामनाम ले, दुनिया दुश्मनी रखे, हमें उससे दुश्मनी नहीं रखनी चाहिए। और रामनाम का जप करता हो उसे जितने की मदद हो सके उतने को सहारा प्रदान करना चाहिए। ये चार भाईओं के नामकरण का आध्यात्मिक अर्थ है। फिर चारों भाईओं का चूड़ाकरण संस्कार हुआ। कुमार हुए तब यज्ञोपवित संस्कार हुआ। गुरु के आश्रम में पढ़ने गए। विद्या प्राप्ति के बाद लौटे। और राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न उपनिषदी विद्या पढ़े थे उस विद्या को अपने जीवन में उतारते हैं। उसमें एक दिन महर्षि विश्वामित्र आते हैं यज्ञ को सफल बनाने के लिए अयोध्या के दरवाजे पर सहायता लेने। वह कथा मैं कल आप के समक्ष प्रस्तुत करूंगा।

पीर का आसन है सहजासन

भगवान रघुनाथ करुणामय हैं और करुणामय होने के कारण, पीराई-पीर को जल्दी जान जाते हैं। उस राम की हम संतान हैं। हम सब, समस्त दुनिया, मानव शरीर धारण करने के बाद यदि अन्य को पीड़ा देते हैं तो उसे बहुत सांसारिक संकट भोगने पड़ते हैं, ऐसा 'मानस' का वक्तव्य हैं जिसके आधार पर यह कथा 'मानस-पीराई' गाई जा रही है। इतने दिनों से चल रही इस कथा में कितने भाई-बहनों के इस कथा संदर्भ में, कथा का संदर्भ न भी हो ऐसे प्रश्न और जिज्ञासाएं मेरे समक्ष आती है, आती रहती है। यथासमय कोशिश करता हूं जिसमें मुझको समझ पड़ती है। पहले तो एक जिज्ञासा यह है ''बापू, पीर किसको कहते हैं, पीराई से भरे पीर की व्याख्या क्या है? उसके लक्षण क्या है? इसकी चर्चा हो रही है तब पीर के लिए जो पहचान दी जा रही है उस पीर का स्थानक तो मैंने देखा है। जैसे पाळियाद, पर जहां जहां ऐसे पीर बसते हैं, हो गये हो, होनेवाले हो उनका आसन कैसा होता है यह मुझको बताइए। -आपका गांव का एक फूल।'' किसी ग्राम्य भाई ने यह प्रश्न पूछा है कि पीर का स्थानक तो जैसे कि पाळियाद, सताधार, परब अथवा तो सभी अपने स्थानक मूलत: पीराई से ही भरे हुए हैं न! वे शब्द प्रयुक्त करते हो या न करते हो, संतत्व से-साधुता से भरे होते हैं। परंतु अमुक स्थानों को विशेष नाम से जाना जाता है। उनकी विशेष पहचान है। अच्छा प्रश्न है मेरी दृष्टि से इसलिए मैंने पहले लिया कि पीर का आसन कैसा होता है? अपने यहां आसन का अर्थ ऐसा होता है कि हमारे मन को और हमारे शरीर को बैठने से जिससे दृढ़ता प्राप्त होती है उसको आसन कहते हैं, बहुत सीधी बात है। आसन अर्थात् अपना शरीर भी दृढ़ रहे और अपना मन भी, थोड़ी चंचलता की मात्रा उसकी कम हो, उसे आसन कहते हैं।

गतकल हम लोग पतंजलि के संदर्भ में यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान, धारणा ये सब बातें कर रहे थे। एक बार पूजनीय रामदेवबाबा के आश्रम में भी 'मानस-जोगसूत्र' जैसी कथा तलगाजरडा ने गाई है। तुलसीदासजी योग को जोग कहते हैं। भाषा कोई भी हो, पर एक भाषा को दूसरी भाषा की निंदा नहीं करनी चाहिए इसका ध्यान रखना चाहिए। लोकभाषा की आप चाहे जितनी प्रशंसा करें, मैं भी उतनी ही प्रशंसा करता हूं क्योंकि अपनी भाषा है। परंतु लोकभाषाकारों को संस्कृत भाषा की निंदा नहीं करनी चाहिए। तुलसीदासजी 'दोहावली' में ऐसा लिखते हैं कि पात्र महत्त्वपूर्ण नहीं है, पात्र में कौन-सी वस्तु है यह महत्त्व का है। भाषा तो पात्र है, उस पात्र में कौन-सी वस्तु है और कौन-सी वस्तु दी जा रही है उसका महत्त्व है। ऐसा उल्लेख तुलसी के 'दोहावली रामायण' में हैं। जैसे मणिजड़ित पात्र हो पर उसमें ज़हर भरा हो तो हम नहीं पीते हैं। उसकी जगह यदि मिट्टी का पात्र हो और उसमें अमृत हो तो हम पीते हैं। आज हुआ क्या है, देवभाषावाले लोकभाषावालों की निंदा करते हैं, ये लोग तो देहाती हैं और इन लोगों की भाषा तो बिलकुल अपभ्रंश है संस्कारी भाषा नहीं है। और लोकभाषाविद भी अधिकतर

संस्कृत भाषा की आलोचना करते हैं। इन दोनों पर मुझे दया आती है। मैं इनको उलाहना तो नहीं दे सकता पर दोनों पर मुझे दया आती है। आपको कदाचित् इतिहास का बहुत ख्याल न हो पर तुलसीदासजी ने जब 'रामचरितमानस' की लोकभाषा में रचना की तब काशी के तथाकथित पंडितों ने बहुत विरोध किया कि ग्रंथ को हम तभी सद्ग्रंथ कहेंगे जब देवभाषा में लिखा हो। यह तो धन्य है आचार्यचरण मधुसूदन सरस्वती को जिन्होंने 'रामचरितमानस' को माथे पर रखा और आदर दिया तथा उस पर एक संस्कृत टिप्पणी की। धन्य है इस्लामी संत खानखाना रहीम कि जो अरबी और उर्दू का विद्वान था, उसने 'रामचरितमानस' लेकर ऐसा लिखा कि 'हिंदुआन को वेद सम नहीं प्रगट कुरान।' पर पंडित बहुत लड़े थे! और उस समय तुलसीदासजी ने दोहा लिखा, 'का प्राकृत का संस्कृत प्रेम होई जो सां।' आप के हृदय में सच्चा प्रेम हो तो देवभाषा हो या लोकभाषा, उसकी लड़ाई क्यों करते हो? बहुत ठंड़ी पड़ती हो तो काश्मीरी शाल ओढ़ने से यदि ठंडी चली जाये तो उसे ओढ़ो। गांव के आदमी के पास काश्मीरी शाल न हो तो कंबल ओढ़े। मूल तो ठंडी उड़ाने की बात है। भाषा को लेकर क्यों लड़ते हो?

तुलसी तो कहते हैं, 'श्याम सुरभि पय बिषद अति गुनहि करई ते पान।' काली गाय है पर दूध तो सफेद ही है न! यह 'रामचरितमानस' तो काली कामद गाय है। और आपको मालूम होगा, जो अपनी कल्पना है, श्रद्धा है, जो हो वो, हमने देखा नहीं है, परंतु एक कामदुर्गा गाय है, सुरधेनु है, उसका रंग काला है, दूध उज्ज्वल है। कोई भी गाय कामदुर्गा ही है मानना चाहिए। हमारे लिए तो यही कामदुर्गा है, कभी विसुकी नहीं। ये रामकथा की कामदुर्गा, कभी भी विसुकी नहीं साहब! और रोज एक बछड़े को जन्म देती है और फिर भी कायम कुंआरी, वर्जिन। देवभाषा हो या लोकभाषा हो, क्या फ़र्क पड़ता है? तुलसी कहते हैं, एक कामरी से यदि ठंडी चली जाती हो तो आपको बहुत से पश्मीनी शाल की जरूरत नहीं है। ठंडी उड़नी चाहिए। अर्थात् ये भाषाभेद की जो चलती है! कोई भी भाषा हो, दूसरी भाषा की आलोचना नहीं करनी चाहिए। लोकभाषा भी संस्कृत की टीका करने लगती है, ये भी ठीक नहीं है। इससे अहंकार बढ़ता है और अहंकार के कारण संघर्ष बढ़ता है। और संघर्ष के सिवाय दूसरा कुछ नहीं होता। समाधान तो आता ही नहीं। ऐसे समय में तुलसीदासजी 'योग' शब्द न प्रयुक्त करके 'जोग' शब्द ही प्रयुक्त करते हैं। वो पतंजलि आश्रम में बाबा रामदेव के वहां 'जोगसूत्र' था न? पर मुझको एक बार 'मानस-अष्टांग जोग' कहना है। कारण 'रामायण' में आठोआठ अंग हैं। 'रामायण' में यम है, 'रामायण' में संयम है, 'रामायण' में आसन है, 'रामायण' में प्राणायाम है, 'रामायण' में प्रत्याहार है, 'रामायण' में ध्यान है, 'रामायण' में धारणा है, 'रामायण' में समाधि भी है।

योग कहता है, जो बैठना, जो बैठक शरीर को और मन को दृढ़ करता है उसको आसन कहते हैं। यह गांव के एक फूल ने प्रश्न किया है इसलिए कहने का अवसर मिला। आप सोफ़ा पर बैठे, कुर्सी पर बैठे जिस तरह से बैठे। मैं यहां बैठा हूं। आप वहां बैठे हैं। जिस बैठक के कारण जिस तरह बैठने से अपना शरीर जिस तरह सुदृढ़ बनता है, शरीर को ये सब अच्छा लगे और उसके साथ-साथ मन भी खूब सुदृढ़ बनता है, उसको अपनी ग्रामीण भाषा में कहता हूं, उसको आसन कहते हैं। और जीवमात्र का अपना आसन होता है यह भी ध्यान रखिएगा। मोरारिबापू के बैठने की अपनी रीति होती है। गजानन की अपनी रीति है। नीलेश की अपनी रीति है। नरेश की अपनी रीति है। हम मनुष्य की ही नहीं, पशु-पक्षिओं की भी अपनी अपनी रीत होती है जो पशु बैठते हैं। आपने पीर का आसन पूछा इसलिए उसमें मैं कह रहा हूं चौरासी लाख योनि है अर्थात् चौरासी लाख आसन हैं। चींटी का अपना आसन है। चींटे का उसका आसन। मक्खी का उसका आसन। एक छोटे से जंतु का उसका आसन। सब का अपना आसन। जीवमात्र के अपने आसन होते हैं। परंतु इस चौरासी लाख की यदि गिनती करने जायें तो पहाड़ जितना ग्रंथ लिखना पड़ेगा! इसलिए भगवान शंकर ने उसमें से छानबीनकर चौरासी आसन दिए हैं। उसमें से हम मनुष्य जाति के लिए पुनः छान करके शंकर भगवान ने जिसको शुद्ध आसन कहा जाता है ऐसे तैंतीस दिए। तैंतीस आसन हैं। 'हठयोग प्रदीपिका', आप योग पर लिखे ग्रंथ को देखिए। मेरे लिए तो ये 'मानस' ग्रंथों का ग्रंथ बादशाह पड़ा है। इसमें सब आता है। 'मानस' की दो पंक्ति में लिखा हो या तो खाली जगह में लिखा हो। बाकी उसमें भरा होगा सब कुछ। एक-एक वस्तु उसमें पड़ी है। तैंतीस आसन आते हैं। फिर उसमें से छानकर मेरे महादेव ने चार आसन किए। हमारे कल्याण के लिए कितना सरल किया है। ये पेपर बनाते हैं तब नहीं कहते कि सात में से कोई पांच के उत्तर दीजिए। इसी तरह छानते, छानते, छानते अंत में चार आसन मिले। चार आसन का नाम कह दूं। वो चौरासी के नाम मुझे याद नहीं है। और इन चारों के उपर जो आसन है उसका नाम पीर का आसन है। वो एक जो है पांचवां उसे

तलगाजरडा कहेगा। जिसको मैं कहूंगा अपनी जवाबदारी से पीरासन या पीर का आसन कैसा होता है? चार आसन हैं। 'रामायण' में ये चारों हैं!

तो चार आसन छानछानकर, इन चारों आसन का नाम है सिद्धासन, सिंहासन, भद्रासन और पद्मासन। चार आसन। पद्मासन में 'रामायण' में कौन बैठा है? मेरी माँ जानकी। अशोकवाटिका के नीचे मेरी माँ जानकी पद्मासन में विराजमान है। सिंहासन पर श्री रघुराय। भगवान राम सिंहासन पर विराजमान हुए हैं। सिद्धासन पर भगवान शंकर हैं। यद्यपि वो तो सहजासन में बैठते हैं, फिर भी सिद्धासन कैलास के लिए गिना गया। सिद्धासन में महादेव विराजमान हुए हैं। ये चार आसन हैं। पर इन चारों में से आपने जो पूछा है कि पीर का आसन कौन-सा? तो मुझे कहना चाहिए, उसका नाम सुखासन है। तो 'रामायण' के आधार पर शब्द है 'सहजासन', स्वाभाविक सहज बैठना। योगी का आसन अलग है। वैरागी का आसन अलग है। और नीरोगी, तंदुरस्त मनुष्य हो उसका आसन अलग है। सभी आसन भिन्न हैं। परंतु पीर का आसन उसे कहते हैं जो सहजासन है। वो अपने ढ़ंग से बैठा होता है। 'रामायण' में कौशल्या माँ बैठी हैं। दशरथजी की मृत्यु के बाद कभी भी उस कमरे में नहीं गई शयनकक्ष में। अयोध्या की पटरानी राजरानी भगवती, ब्रह्म को जन्म देनेवाली माँ कौशल्या, वो अपने राजकक्ष से बाहर शयनकक्ष के बाहर एक चटाई बिछाकर बैठी हैं, वह मेरी कौशल्या माँ का वियोगासन है। पृथ्वी में खड्डा खोदकर बैठा हुआ संत भरत, वह उसका वियोगासन है। सतासी हजार वर्ष तक भगवान शंकर ने एक अलग प्रकार का आसन लगाया और बाहर बैठ गए तब जगदंबा भवानी सतासी हजार वर्ष तक कैलासभवन में बैठी रही वो माँ का वियोगासन है। ये सब वियोगासन हैं। तन-मन से मनुष्य तंदुरस्त हो, ऐसे महापुरुषों का आसन उनके तरीके का होता है। आपने रणछोड़दासजी बापा का चित्र देखा है? वो दोनों पैर मोड़कर ऐसे बैठते थे। वो उनका आसन था। सब का अपना-अपना आसन होता है साहब!

पीर का आसन है सहजासन। वो कभी पैर फैलाकर बैठा होता है। ये अज़मेर में जो पीर की इतनी अधिक ख्याति है और वो एक पैर ऐसे ऊंचा रखते थे और एक पैर ऐसे झुका हुआ रखते थे! वह उस पीर का आसन था। निज़ामुद्दीन के लिए कहा जाता है कि दोनों घुंटने पर माथा ऐसे रखकर बैठते थे कि किसीको ख़बर न पड़े कि पीर की आंखों में आंसू है। वो उनका आसन; दोनों पैर के उपर ऐसे सिर रखकर निझामुद्दीन औलिया का वो आसन था। सहजासन ये पीर का आसन है। पीर वो है जिसमें बहुत नियम लागू नहीं पड़ते। नियम से मुक्त होता है। कोई विधि-निषेध नहीं है। कोई गणित नहीं। कोई संविधान नहीं। सहज आसन। तो पीर का आसन सहजासन, ऐसा मैं समझता हूं। ये है पीरासन; बहुत बड़ा आसन। फिर हिंदवी पीर हो या कि इस्लामी पीर हो; बौद्ध पीर हो कि जैन फ़कीर हो; कोई फ़र्क नहीं पड़ता। सब के अपने आसन हैं। बाबा लोगों के अपने आसन हैं साहब! मठ और पीठ जरूरी हैं। वो सेवास्थान हैं। उस पर बैठनेवाला समस्त परंपरा को रोशन करने के लिए सेवा और स्मरण करता ही रहता है। वो नितांत जरूरी है। पर उन सब बैठनेवालों के आसनों से, पीरों की बैठकें बहुत अलग होती हैं। सब की अपनी बैठक अलग है, अपने आसन हैं।

जिसकी कृपा से ये मैं पूरी दुनिया में घूमता हूं वो मेरे दादा के बैठने की एक रीत थी जो मैंने बहुत बार आप से कही है। वो दोनों पैर ऊपर करके ऐसे के ऐसे बैठे रहते बस। दोनों पैर ऐसे ऊंचा रहते। इस तरह से पैर को मोड़ते न थे। ऐसे दोनों पैर ऊंचा करके बैठे रहते। मुझको 'रामायण' पढ़ाते तब इस तरह पढ़ाते थे। पीरों का अपना आसन होता है। मुर्शिदों का अपना आसन होता है। इन आसनों को याद करें तो भी उद्धार हो जाएगा। उनके शब्द, उनकी रीतें उनके आसन, वो पीर का तकिया। वो तो अद्भुत आसन है। जहां जगदंबादं बैठी हो, वहां उनका अपना आसन होता है। माताएं बैठी हैं। सब की अपनी भूमिका होती है। प्रत्येक वस्तु के केन्द्र में एक वस्तु पड़ी होती है। वेदों के केन्द्र में वेदिका है। समूचे 'भागवत' के केन्द्र में राधिका है। पूरे 'रामायण' के केन्द्र में पादुका है। यह केन्द्रवर्ती एक विचार। भले राधा का नाम 'भागवत' में नहीं है ऐसा सभी कहते हैं, पर पूरे 'भागवत' का केन्द्र राधिका है। राधिका मीन्स प्रेम। राधा को अंदर से ले लो, गोपी को अंदर से निकाल दो तो क्या बचेगा? उसी तरह 'रामायण' का केन्द्र पादुका है। पादुका ले लो मतलब क्या बचेगा? 'भगवद्गीता' का केन्द्रबिंदु है स्व, स्व की भूमिका। अर्जुन की अपनी भूमिका, कृष्ण की अपनी भूमिका; द्रोण की अपनी भूमिका, भीष्म की अपनी भूमिका। सब की अपनी अपनी भूमिका वो केन्द्रवर्ती विचार है। और वेदों का केन्द्रवर्ती विचार है वेदिका। ये सब उसकी मूल वस्तु हैं।

इस तरह पीर का आसन वो बिलकुल सहज होता है, स्वाभाविक होता है। ऐसा पीर किसे कहते हैं जिसकी चर्चा 'मानस' के आधार पर मैं और आप इस कथा में कर

रहे हैं। 'मानस-पीराई' जिसकी संवादी चर्चा हम सब कर रहे हैं। एक आगे का संवाद। एक रूखड़ को एक सुखड़ प्रश्न करता है कि पीराई से भरे हुए पीर का हमें लक्षण समझाइए। ये रूखड़ तो आप जानते हैं, 'मानस-रूखड' एक कथा भी गत वर्ष शिवरात्रि के दिनों में जूनागढ़ में हुई थी। अंबाजी की कथा में रूखड का स्मरण है।

जेम झळुंबे धरती माथे आभ जो,
एवा गरवाने माथे रूखडियो झळुंबियो।

'रूखड' शब्द मेरी दृष्टि से बहुत महिमावंत रहा है। रूखड अर्थात् मेरी दृष्टि से एक विलक्षण सद्गुरु। और इसीसे मैंने राम को भी रूखड कहा, कृष्ण को भी रूखड कहा और महादेव तो रूखड है ही। रूखड का अर्थ वैसे होता है घूमता भटकता हुआ। वो रूखड तत्त्व हैं। रूखडतत्त्व यहां कोई आलोचना के रूप में नहीं है। और इसीलिए आज के संवाद में एक रूखड से एक सुखड प्रश्न पूछता है। सुखड अर्थात् शिष्ट समाज का विनयी मनुष्य, एक पढ़ालिखा मनुष्य। ये 'सुखड' शब्द करण का है अपनी द्वारका के। वे अपने ढ़ंग से कविता लिखते हैं। और उस कविता में उनका तखल्लुस-उपनाम 'सुखड' शब्द प्रयुक्त करते हैं। पर एक अवधूत, बुद्धपुरुष के पास बैठे एक सुखड ने प्रश्न किया कि जिसमें पीराई हो ऐसे पीर के लक्षण कौन-से हैं? अब इसको कैसे समझाना? जनकराजा सुखड हैं और अष्टावक्र रूखड हैं। सुखड अर्थात् जो गुरु के चरण में घीस गया हो और फिर भी रोज नई सुगंध प्रगटित करता है। गुरु के चरण में समर्पित होने के बाद जो शीतल रहा हो, जिसको अहंकार न आया हो चंदन के जो लक्षण हैं, शीतलता और सुगंध; वो गुरु के चरणारविंद में रोज घीसकर नई सुवास जिसने जीवन में प्रगट की है ऐसे जनक सुखड हैं। और अष्टावक्र रूखड हैं। चीन के दार्शनिकों के लिए कहना हो तो मैं कह सकता हूं अपनी जवाबदारी से कि लाओत्से रूखड हैं, कन्फ्युसियस सुखड हैं। 'मानस' के आधार पर कहना हो तो मैं कह सकता हूं कि मेरे कागभुशुंडि रूखड हैं पर पढ़ालिखा गरुड जिसके पंख में से वेद निकलता है, सुखड है। मछंदर रूखड है। गोरख सुखड हैं, वो शिष्ट हैं जरा-सा।

ऐसी जो जिज्ञासाएं हुई हैं और उसके जवाब में हम सब को परिचय मिला है पीराई का। ऐसा आज का संवाद। रूखड जैसे बुद्धपुरुष से एक सुखड प्रश्न पूछता है कि पीर की व्याख्या क्या है? पीर किसे कहते हैं? पहला लक्षण, चाहे जैसी भी परिस्थिति आये पर पीर के मुख का रुख कभी न बदले उसका नाम पीर। कोई गाली दे, कोई स्तुति करे, कोई स्वागत करे, कोई तिरस्कार करे, कोई सुखी करे, कोई दुःखी करे, कोई अपमान करे, कोई सम्मान करे। पर जिसके मुख का रुख न बदले। मेरा राम रूखड है। राजगद्दी की बात आई तब जिसको प्रसन्नता न हुई और चौदह वर्ष का वनवास आया तब उनके चेहरे पर कोई नाराज़गी की रेखा न उभरी, उनके मुख का रुख कभी न बदला। रुख अर्थात् चेहरे का हावभाव। मेरा राम तो, यहां उसका रुख तो बदला ही नहीं मुख का; एक रेखा भी नहीं बदली। जो कुछ हुआ, राज या वन, जो कुछ हुआ कोई फ़र्क नहीं पड़ा। पर विष्णु के मुख का रूख बदला। नारद के प्रसंग में जब नारदजी ने विष्णु को कहा कि मुझको विश्वमोहिनी से विवाह करना है और आपका रूप मुझको दीजिए, नहीं तो वो कन्या मुझको नहीं मिलेगी। नारद ने कहा, मेरा हित तभी होगा, जब आपका रूप मुझे मिले तो कन्या मेरा वरण करेगी स्वयंवर में, वो मेरे साथ जुड़े, वरमाला पहनाए, जयमाला पहनाए। तब भगवान के मुख का रुख थोड़ा बदला है। रुख बदलकर भगवान बोले हैं कि नारद, मेरा स्वभाव सामनेवाले का हित करना नहीं है, उसका परम हित करना मेरा स्वभाव है। आपका मन छोटा है। आप का स्वभाव हित करना है। मेरा स्वभाव है आपका परमहित जो होगा वही मैं करूंगा।

अवतारों में कभी रूख बदलते दिखे हैं पर बुद्धपुरुषों में कभी रुख बदलते नहीं दिखा। अवतारों ने युद्ध किया है। किसी सद्गुरु ने किसी दिन युद्ध नहीं किया। यह फ़र्क है। अवतारों ने युद्ध किया है यह आलोचना नहीं है क्योंकि युद्ध करना ये कर्तव्य बना। क्योंकि दुष्कृत्य का नाश करना था। वे किसीको मारने के लिए युद्ध न थे, वे तारने के लिए युद्ध थे। वे किसीकी मृत्यु हो इसके लिए युद्ध न थे। वो किसीकी मुक्ति हो इसके लिए युद्ध थे। वो निर्वाण यदि पायेगा तो कुछ नया निर्माण होगा। इन अवतारों में दुरितों का नाश करने के लिए कृष्ण को साक्षी बनकर युद्ध में खड़ा रहना पड़ा था। भगवान राम को रावण की नाभि पर प्रहार करना पड़ा था। सद्गुरुओं ने युद्ध नहीं करवाया। सद्गुरुओं ने संवाद रचा है और समाज में बुद्धों को प्रकट किया। अनेक महापुरुष। हमें ऐसी महान परंपरा दी कि आज उसके उजाले में हम अपनी मूढ़ता के अंधकार से बाहर निकलते हैं। ऐसे सद्गुरुओं की श्रद्धा पर जी रहे हैं। सद्गुरु किसी दिन सांप्रदायिक नहीं होगा। याद रखिएगा, जो सचमुच सद्गुरु है; जो बुद्धपुरुष है वो सांप्रदायिक नहीं होगा, वो गंगा का प्रवाह होता है। इसीलिए बुद्धपुरुषों की महिमा है, वो गज़ब है! किसी भी तरह का आश्रित गुनाह करता है, रूखड टाईप का जो बुद्धपुरुष होता है, अपना रुख नहीं बदलता।

मेरे कहने का अर्थ, अवतारों के मुंह पर रुख बदलता दिखता है क्योंकि उन्हें अवतार कार्य करना है। युद्ध हुए पर कोई बुद्धपुरुष ने युद्ध नहीं किया। और शायद कोई धर्मगुरु युद्ध करे तो वो बुद्धपुरुष नहीं, वो धर्मयुद्ध होगा। यस, वो पुरोहित होगा, पंडित होगा, बुद्धपुरुष नहीं होगा। बुद्ध तो वो कि जिसने युद्ध रोके। कलिंग का युद्ध रोककर अशोक आदि को दीक्षित करके उसको 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का बोध दिया। बुद्धपुरुष किसीको मारता नहीं, ख़बर न पड़े इस तरह सह लेता है। मेरे कहने का अर्थ है, अवतारों का रुख बदला है पर बुद्धपुरुषों के मुंह नहीं बिगड़े साहब! और किसी भी परिस्थिति में जिसके मुख का रुख न बदले वो पीराई से भरा पीर है। ऐसा एक रूखड ने सुखड को कहा। फिर एक बार रूखड अर्थात् मेरी दृष्टि से, साधना की एक बहुत ही ऊंचाई पर पहुंचा हुआ, गिरनार के उपर से चमक सके उसका नाम रूखड है।

रूखड बावा तुं हळवे हळवे हाल जो,
एवा गरवाने माथे रे रूखडियो झळुंबियो।
जेम झळुंबे मोरली माथे नाग जो
एवा गरवाने माथे रे रूखडियो झळुंबियो।

रूखड अर्थात् बुद्धपुरुषमात्र, यह स्मरण रहे। ऐसे एक बुद्धपुरुष से, जो गुरु के चरण में घीसकर सुगंधी बना है, जो घीसकर उग्र के बदले शीतल बना है, ऐसा सुखड जैसा आश्रित पूछता है, हे भगवान, पीराई भरी हो ऐसे पीर का लक्षण। और रूखड बतलाता है, जिसके मुख का रूख न बदले उसे पीर समझना चाहिए। छोटी-छोटी बात में नाराज़ हो उसको पीर नहीं कहेंगे। बहुत से लोग कहते हैं, हमारे गुरु को बुरा लगा! वो गुरु था ही नहीं! उसको कहां गुरु कहेंगे? रिहामण हो उसको विहामण नहीं कहेंगे, यह मैं बार-बार कहता हूं। जिसको बात-बात में रीस चढ़ती है उसे किसी दिन विहामण नहीं कहेंगे। जिसका मुख मुस्कुराता हो। समस्त बुद्धपुरुषों की ये चर्चा है। विहळानाथ इसमें केन्द्र में बैठे हैं। कितना बड़ा तत्त्व है पीर का! 'मानस' के आधार पर मैं ये बातें कर रहा हूं। राम का मुख बदला नहीं, इसलिए वो रामतत्त्व है। जिसका जीवन रूई जैसा है वो पीराई से भरा हुआ पीर है।

साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू।।

तुलसी कहते हैं, सिद्धपुरुष, शुद्धपुरुष, बुद्धपुरुष, पीराई भरी हो ऐसे किसी पीर का पीर पुरुष उसको कहेंगे जिसका जीवन रूई जैसा हो, कपास जैसा हो, कपास के फूल जैसा हो। तुलसी कहते हैं, 'निरस बिसद'; कपास के फूल में रस नहीं होता, कपास के बीज में होता है, कपास का तेल होता है। जो रूइ है उसमें रस नहीं होता। साधु कौन? जिसमें किसी भी प्रकार की आसक्ति या वासना की सिक्तता न हो। वो नीरस हो। नीरस अर्थात् एक डिस्टन्स रखकर रहता है। इसीलिए जिसको मैं कहता रहता हूं, साधु को एक निश्चित डिस्टन्स रखना चाहिए। दूर से सब को लगे कि वो अपना है पर उन सब से एक प्रामाणिक डिस्टन्स रखे। पीर वो है जो सब से एक प्रामाणिक डिस्टन्स रखता है। नीरस; कपास की रूइ में रस नहीं, कपास के बीज में होता है, कपास में नहीं। साधु अर्थात् रूखड, रूखड अर्थात् रूई। पीर जो अनासक्तभाव कहलाता है।

बिरस का अर्थ होता है विशुद्ध, उज्ज्वल, पवित्र। कपास की रूई, फूल कितना शुद्ध होता है! श्वेत, उज्ज्वल, पवित्र। पीर वो है जिसका जीवन श्वेत हो। मैंने आपसे कहा है न कि अपने यहां इस्लाम धर्म की पीराई में नेजा लाल होता है। पीराई में माननेवाले हरे कपड़े पहनते हैं। वस्त्र हरा हो, वृत्ति सफेद हो उसका नाम पीर। और यहां तीनों आप देखेंगे। पाळियाद में क्या है? सफेद वस्त्र है। वस्त्र सफेद पहनते हैं। हमारे जितने साधु जो पाळियाद की जगह के साथ जुड़े हैं वो सभी पगड़ी पीली पहनते हैं। और ये विहळानाथ के पीछे जो पिछवाई है वो हरी। बदलती होगी, पर मैंने जब भी देखा तब हरी। यानी हरा रंग, सफेद रंग और केसरी, पूरा तिरंगा फरकता है पाळियाद में। ऐसा भी लगता है कि पूरा राष्ट्रध्वज! यह राष्ट्र की पीराई का मानो परिचय देता है। पीराई की वृत्ति श्वेत ही होती है साहब! हां, कपड़ा हरा होगा। फ़कीर, औलिया लगभग हरा कपड़ा पहनते हैं। हम जानते हैं। रामदेवपीर बाबा को माननेवाले, उस पीर को माननेवाले सभी लगभग हरा कपड़ा पहनते हैं। उनका नेजा भी हरा, घोड़ा भी हरा लो!

लीलुडो छे घोड़लो ने हाथमां छे तीर,
वाणियानी व्हारे आव्या रामदेवपीर।
मारो हेलो सांभळो होहोहो...

वृत्ति श्वेत। उत्तम उज्ज्वलता है उसकी साहब! तुलसीदासजी 'अयोध्याकांड' में कपास के फूल का वर्णन करते हैं। उस फूल की पंखुड़ी खुलकर हंस के पंखों के साथ स्पर्धा करती हो ऐसा फूल होता है। 'निरस बिसद गुनमय फल जासू।' गुनमय, गुन का संस्कृत में अर्थ रेसा-धागा है। गुन मानी रेसा, झीनेझीने रेसे, फिर उससे बनी हुई रस्सी उसको भी गुन कहते हैं। कपास के फूल में कितने पतले-पतले रेसे होते हैं! पूरा कपास का फूल रेसामय है, गुनमय

है। और वो कौन-सा गुण? ना सतोगुण; ना रजोगुण; ना तमोगुण, वो गुणातीत गुण। कौन पीर गिनायेगा? जो कपास के फूल जैसा होगा, उजला होगा, आसक्ति से मुक्त होगा, सद्गुणों का पूरेपूरा संग्रह होगा। और फिर भी बंधेगा नहीं। क्योंकि रस्सी बांधती है परंतु डोरी तो बांधने का भी काम करती है। फिर भी किसी से बंधता नहीं ऐसा गुणातीत गुरु यही पीर का परिचय है।

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।

कपास का फूल कितना दु:ख सहन करता है साहब! वह अपने पौधे से अलग होता है। फूल को और कपासबीज को आप वैसे अलग करोगे न तो भी थोड़ी रूइ चिपकी रहेगी। उसको बिगल करने में बहुत ही मेहनत पड़ती है। इसीलिए कपासबीज से अलग होना, आसक्ति में से अलग होना है ये बहुत कठिन है। यह सहन करना पड़ता है। वह कपास बीज से मुक्त होता है, फिर उसकी घुनाई, ये दूसरा दु:ख है। फिर उसको पाट पर चढ़ाकर उसकी पूनी बुनते हैं। उसके बीच में कीली डालते हैं, शूल डालते हैं, छड़ डालते हैं। पूनीयां बुनते जाते हैं और काढ़ते जाते हैं यह उसका तीसरा दु:ख है। फिर शाल पर चढ़ती है। फिर काती जाती है। उसमें से वस्त्र बनता है। फिर वापस उसको धोया जाता है। फिर वापस उसका टुकड़ा होता है। फिर उसकी सिलाई होती है। फिर वापस धुलाई होती है। धोने के बाद सूख जाने पर उस पर गरम-गरम इस्त्री घुमाते हैं तब वह मेरे और आपके शरीर पर वस्त्र बनकर आता है। तब मेरे और आपके सभी जो द्वार है शरीर रूप में उन सब को ढ़ंक देता है। साधु कौन है? अनेक प्रकार के दु:खों के फूल जैसे साधु को पीर कहते हैं। खूब मुश्किली में से साधु निकलता है और फिर भी वो दूसरों पर उपकार करता है, दूसरों के छिद्रों को ढ़ंकता है। हमें उजला कर देता है साधु। जन्मजात दोषों को भी ढ़ंकता है; उसका नाम पीर है।

तो एक रूखड से एक सुखड पूछता है पीराई से भरे पीर का लक्षण। तो पहला लक्षण मैंने कहा वो, किसी भी परिस्थिति में जिसका रूख नहीं बदलता। दूसरा लक्षण, जो रूई जैसा जीवन जीता हो। और तीसरा लक्षण पीराई से भरे पीर का, जिसमें रूप है वह पीर होता है। ध्यान दीजिएगा, केवल शारीरिक रूप की बात नहीं है। और वो भी होगा। बुद्ध बहुत रूपवान थे। बत्तीस वर्ष का यह नवजवान, मेरा शंकराचार्य बहुत रूपवान है साहब! अभी काल्पनिक चित्र भी आप देखे तो लगेगा वाह रे मासुमियत! वाह रे सुकोमलता! रूप ये पीराई का एक लक्षण है। यह तो मेरी और आप की आंखों में विकार आ गया है इसलिए हम सब रूप की निंदा करने लगे हैं नहीं तो रूप ये परमात्मा की देन है। उसको वैसी आंखों से देखा जाए तो। रूप का अनादर नहीं है। पीर स्वयं रूपवान होते हैं साहब! बुद्ध तो बहुत रूपवान हैं। महावीर अपने पूर्वाश्रम में बहुत ही रूपवान थे। आप कल्पना कीजिए, निझामुद्दीन कितने रूपवान होंगे! रूमी कितना रूपवान होगा, आप कल्पना कीजिए! शंकराचार्य कैसा रूप? स्वामी रामतीर्थ, कैसा रूप साहब! स्वामी विवेकानंद, नौजवान! पीर रूपवान होता है साहब! शंकराचार्य कितने सुंदर हैं! कबीरसाहब कितने रूपवान होंगे! बहुत रूपवान होंगे। और मुझको तो कोई बंधन नहीं है।

हुं मुक्ति केरो चाहक छुं, मने बंधन नथी गमतां;
कमळ बिडाय ते पहेलां भ्रमरने उडुयन देजे।
खुशी देजे जमनाने, मने हरदम रुदन देजे;
अवरने आपजे गुलशन, मने वेरान वन देजे।

हमारे भावनगर के नाझिर बोले हैं। आप कल्पना कीजिए, जिसस क्राइस्ट कितने रूपवान होंगे! और मुहम्मदसाहब का तो चित्र नहीं बना सकते और न मूर्ति बना सकते, ये पूरी विचारधारा का प्रतिबंध है। बाकी ऐसे आंखें मूदें तो मुझको जो मुहम्मद पैगंबर दिखते हैं वह मनुष्य रूपवान लगता है साहब! मेरा राम कितना रूपवान है! करोड़ो कामदेव लज्जित हो जायें! कृष्ण कितने रूपवान हैं! इन सब पीरों के पीर हैं।

पीर का अपना एक रूप होता है। केवल शारीरिक बात नहीं है। पर शरीर सुंदर हो तो उसकी अवगणना किस लिए? राम के सुंदर शरीर को देखते ही विदेहराज जनक ऐसा कहते हैं कि इस बालक को देखकर मेरा मन जैसे चंद्र में चकोर की दृष्टि लग जाती है। यह राजकुमार कौन है? ये कौन बालक है? रूप की महिमा है साहब! हां, आंखें सही रखनी चाहिए। अपनी आंखें बिगड़ी हो तो आंख का इलाज करवाना चाहिए। रूप की महिमा है ये भूलना मत। हां, अपनी आंख सही होनी चाहिए। तो जिसमें पीराई भरी हो ऐसे पीर का पहला लक्षण, किसी भी परिस्थिति में जिसके मुख का भाव न बदलें। दूसरा लक्षण, जिसका पूरा जीवन कपास के फूल जैसा हो। तीसरा लक्षण, वो बहुत ही आंतर्-बाह्य सुंदर हो, यह उसका लक्षण है। चौथा लक्षण; एक सुखड रूखड से पूछता है, भगवन्, मुझको बताइए, पीर का चौथा लक्षण क्या है? तब बताया है, मेरे और आपके शरीर में जो घाव लगी हो उसको सुखाकर भर दे उसका नाम पीर है। हम सब को अनेक प्रकार के घाव लगे हैं, कभी काम का, कभी क्रोध का, कभी ईर्ष्या का, कभी द्वेष का, कभी प्रलोभन का, ख़बर नहीं, कितने-कितने घाव लगे हैं अपने उपर। उसको जो सुखाकर भर दे मंत्र से, विचार से, आदेश से। हमारे सभी विकारों के जो छिद्र हैं, उन घावों को भर दे उसका नाम पीर है। उन पीरों का पीर मेरा एक हनुमान 'रामायण' में। लक्ष्मण को घाव लगी। इन्द्रजित ने तीर मारा और लक्ष्मण को घाव लगी। लक्ष्मण मुर्छित हुऐ वह घाव किसके द्वारा भरी? हनुमानजी द्वारा। सुषेण वैद्य ने कहा कि हनुमान, सुबह तक आप संजीवनी ले आओ तो ये घाव भरेगी। हनुमान मेरी दृष्टि से पीरों के पीर हैं। इसलिए कि घाव भर दे उसका नाम पीर है। हमारे घाव भर दे। मुझको तो कभी ऐसा लगता है कि विकारों को भी मिटा दे और जो तथाकथित संस्कार हमें घमंडी बनाए हो उसको निर्मूल कर दे। अच्छे संस्कार बहुत जरूरी हैं। पर अमुक गलत रहन-सहन को मिटा डाले। घाव भरे ऐसा कोई रूखड वो पीरों का भी पीर है।

अंतिम प्रश्न आया है कि पीर का आख़िरी लक्षण क्या है? तब एक बुद्धपुरुष उसका जवाब देता है कि जिसका दर्शन नितनूतन होता है, जिसका रोज नया रूप होता है। जिसस क्राइस्ट ने कहा है कि मनुष्य को रोज नया कपड़ा पहनना चाहिए। जिसस कपड़ा नया नहीं पहनते थे। बहुत गरीब हैं। पर उनका वाक्य है, मनुष्य को रोज नया कपड़ा पहनना चाहिए। उसी तरह पीर वो है जिसके पास रोज नई ताज़गी होती है। बंधा हुआ नहीं होता है पीर। निरंतर रूपांतरित होता है वो इन्सान। गांधीजी कहते थे कि मैं आज बोला उसको कल के लिए मेरा पुराना गिनना। और फिर जो बोलूं उसको नया गिनना। और विनोबाजी तो ऐसा ही कहते थे कि मेरे वचनों पर बहुत भरोसा मत रखना क्योंकि मैं रोज नया बोलूंगा। क्योंकि मैं नित नूतन हूं। रोज नया दर्शन। शास्त्रों का, सिद्धांतों का, दर्शन का वो पीर हैं। ऐसी एक परम अवस्था।

पाया हुआ पीर वहां तक अपना रूप अथवा तो अपना दर्शन बदलता है कि जब उसको ऐसा लगने लगता है कि मेरी अपेक्षा मेरा शिष्य अधिक जागृत हो गया है तब वो गुरु अपने शिष्य को भी गुरु मानकर पग लागता है। इतना परिवर्तन जो स्वीकार करता है उसका नाम पीर कहलाता है। समझदार बाप यदि रोज नूतनता स्वीकार करनेवाला हो तो बेटे में प्रगट हुई चेतना को पग लागता है कि मेरे पुत्र में नया आया है। इसीसे अपना आध्यात्म में पुत्र से हार जाने में पिता गौरव मानता है। और एक मात्र भारत देश है जहां शिष्य से हार जाने में गुरु महानता मानता है कि शिष्य से पराजित होना ये गुरु का गौरव है। ऐसा पीर नित नूतन परिवर्तन। एकदम जड़ बुद्धपुरुष नहीं होता। अमुक वस्तु लोग पकड़े रखते हैं! अपना इरादा नहीं होता। ऐसा पकड़के रखते हैं! एक बार हमारे मुंबईवाले दो-चार जन फोटो लेने आये। मैं तलगाजरडा बैठा था। मैं झूले पर झूलता रहा। झूले पर बैठा था। उसमें मुझसे दो-तीन बार कहा, बापू, हम फोटो पाड़ सकते हैं? इसलिए पहले तो मैंने कहा कि फोटो का क्या काम है? चाय पानी पीओ न! तो बोले, नहीं, फोटो पाड़ते हैं। इससे मैंने कहा, पाड़ो। मैं झूल रहा था। इसलिए वे फोटो पाड़ रहे थे फिर भी वो फोटो आया नहीं कुछ इसलिए बगलवाले ने क्या कहा कि बापू की इच्छा नहीं होगी तो किसी भी कैमरा से फोटो नहीं आयेगा! फोटो न आने का कारण मैं झूल रहा था इसलिए नहीं आया था। वो पाड़ने जाता तो मैं उधर चला जाता। पर लोग ऐसा जोड़ देते हैं बिना वजह! लोगों को कुछ न कुछ ऐसे ही बेकार का चमत्कार खड़ा करना है बेवजह! इसमें से बाहर निकलना। पाळियाद के पीर की कथा सुनी है; तो दोरेधागे से बाहर निकलना; झूठी अंधश्रद्धा में से बाहर निकलना। यह जितनी उज्ज्वल परंपरा है, जिसको मैं निर्मल परंपरा कहता हूं। विहळ से निर्मल तक की परंपरा, उसकी कथा सुनने के बाद नितनूतन रहना। वैसे हम चाहे जितने बड़े हो पर अपने से छोटा आगे निकल जाये तो प्रसन्न होना। आप नया बनना। ये जरूरी है।

पीर का आसन है सहजासन। वह कभी पैर लंबा करके बैठा होता है। ये अजमेर में जिस पीर की इतनी अधिक ख्याति है और वे एक पैर ऐसे ऊंचा करके और दूसरा ऐसे झूका हुआ रखते थे। वह उस पीर का आसन था। निझामुद्दीन के लिए कहा जाता है कि दोनों घुंटनों पर सिर ऐसे रखकर बैठते थे कि किसी को पता न चले कि पीर की आंखों में आंसू हैं। ये उनका आसन, दोनों पैर पर ऐसे सिर रखकर निझामुद्दीन औलिया का आसन था। सहजासन ये पीर का आसन है। पीर वो है, जिसमें बहुत नियम लागू नहीं पड़ते हैं। नियम से मुक्त होता है। कोई विधि–निषेध नहीं होती। कोई गणित नहीं। कोई संविधान नहीं। सहज आसन। तो पीर का एक आसन सहजासन है, ऐसा मैं समझता हूं।

मानस-पीराई : ८

हनुमान पीरों के पीर हैं, महावीर हैं

'मानस-पीराई' की कथा हम सब साथ मिलकर संवादी सूर में गा रहे हैं, बातें कर रहे हैं। उसमें आगे बढ़ें इससे पहले दो-तीन प्रश्न हैं। ''बापू, पीर का तीर्थ कौन-सा है? ये पीर की बातें चल रही हैं तो पीर का तीर्थ कौन सा है? और वो तीर्थ कैसा है? पीर की यात्रा किस तरह से होती है? पीर का अवतार बार-बार होता है?'' इतने प्रश्न एक श्रोता ने पूछा है। मुझको जो समझ आता है वो आप से कहता हूं। सभी जवाब आप स्वीकार कर लें ऐसा आग्रह नहीं है। मेरे अंत:करण की प्रवृत्ति आपके अंत:करण का सत्य बने तो स्वीकार करना, नहीं तो भूल जाना। पहला प्रश्न है कि तीर्थ कौन-सा? इसका जवाब बहुत दूर क्यों जाना? पाळियाद। हजारों लोगों के, देश-विदेश की श्रद्धा का केन्द्र बना है। कथा के दरमियान विशेष केन्द्र बना है। ऐसा पाळियाद तीर्थ है। और शास्त्रीय प्रमाण दूं तो जहां राम का जन्म हो, जहां कथा चलती हो और कथा में रामजी का जन्म हो वहां तुलसी ने लिखा है, 'तीरथ सकल तहाँ चली आवई।' वहां सभी तीर्थ चले आते हैं। अर्थात् ये पाळियाद तीर्थ है, श्रद्धा है तो। जिसे श्रद्धा है, आस्था है, भरोसा है उसके लिए पाळियाद तीर्थ है। सायला तीर्थ है। जहां कोई न कोई साधना करके अपना बैठना किया है वो सभी तीर्थ है साहब! मैं सभी को नहीं गिना सकता। शायद कुछ रह जायें तो अन्यथा न मानना। सभी तीर्थ हैं। इधर दूधरेज जायें तो तीर्थ है। वीरपुर जाये तो तीर्थ है। परब जाये तो तीर्थ है। सताधार जायें तो तीर्थ है। हजारों लोगों की श्रद्धा है। ये महुवा तहसील का बगदाणा तीर्थ है। सभी उसको अपने-अपने तरह से तीर्थ कहते हैं। ये गढ़डा, मूल रामजी मंदिर का और पूरी रामानंदी परंपरा में, अयोध्या के पास छपैया से जब सहजानंद भगवान पहली बार पधारें तब गढ़डा के रामजी मंदिर में उतरे या रामजी मंदिर का उन्होंने प्रसाद लिया। रामानंद पूरी परंपरा; तो गढ़डा तीर्थ है। जहां-जहां महापुरुष विराजमान हुए हैं वो सभी तीर्थ हैं साहब! ये साळंगपुर तीर्थ है। हनुमान बैठे हैं, वह भी ताबा का। किसके ताबा का, मेरा नाथ जाने! अंबाजी तो महातीर्थ है। सोमनाथ; और मेरा सुंदर रूपवान द्वारकानाथ, आहाहाहा...। उधर पालीताणा जायें तो जैनों का तीर्थ हैं। उस पहाड़ पर भी शंकर बैठे हैं, महादेव बैठे हैं। और महादेव तो आदि-अनादि। अब मुझको क्या कहना? फिर तो अपना मज़बूत करने के लिए दूसरे को हटाएं तो हमारे जैसी मूर्खता किसकी? बाकी ये मूल को नहीं हटाना चाहिए।

ये सब तीर्थ हैं। इन सब में कोई न कोई पीर बैठा है। कोई न कोई बुद्धपुरुष बैठा है। उसका एफ.डी. किया हुआ हम सब खा रहे हैं। उन्होंने जो फिक्स डिपोज़िट-एफ.डी. तप किया है, साधना की है उसका पुण्य खा रहे हैं। यह सभी महान पुरुषों की जमा की हुई ये पुण्याई, पीराई है। इसमें हमें वृद्धि करनी चाहिए। ये सभी तीर्थ हैं। अंजार तीर्थ है। 'जातरायुं करवा जेसल पीरनी, हैडा हालो रे अंजार।' माता का मढ़ तीर्थ है। ये सभी तीर्थ हैं। और गिरनार...! वो तो तीर्थों के दादा का दादा है! इसमें जितना दिमाग में आ रहा है उतना बोल रहा हूं। कोई ऐसा नहीं समझे कि हमरा

तीर्थ क्यों रह गया? आपका सवाया तीर्थ है। परंतु पाळियाद तीर्थ है। तीर्थ नहीं होता तो ऐसे बड़े-बड़े प्रेमयज्ञ होते ही नहीं। तीर्थ रह गये और तीर्थंकर चले गये इसलिए हम सब को कुछ दिखता नहीं है! ऐसे तीर्थंकरों को पुन:स्थापित करने के लिए मेरा और आपका यह पवित्र प्रयत्न है। ये सभी तीर्थ हैं बाप! जिन पीरों ने कोई छल नहीं किया होगा, कोई नेटवर्क नहीं रचे होंगे, कोई होशियारी न की होगी, कोई शास्त्रों में फेरबदल नहीं किया होगा और जो चौपाई लेकर बैठे होंगे वो सभी पीराणा हैं। अपने गिरनार में आया दातार पीर है। इस्लामिक स्थान जहां पीराणा है, दरगाहें हैं, जो पूजा जाता है वो तीर्थ है। और आज तो इस्लाम धर्म के अमुक मुरब्बी 'रामचरितमानस' को आदर देने आये हैं। 'रामायण' पर उन्होंने फूल चढ़ाएं। ये तीर्थ ये सभी काम कर सकते हैं। उन सब को मैं सलाम करता हूं। जो यहां आकर फूल पधरा गए, मुझसे कहे कि बापू, सब को कहते रहना कि इसी तरह की एकता रखिएगा। मेरा धंधा ही यही है सब को एक रखने का। यही काम करते हैं। और सुंदर परिणाम मिलता है। आप सभी आये। मेरा आप सब को सलाम। अल्लाह आप सभी को प्रसन्न रखे और इसी तरह का विचार कायम रहे। तो ये सब तीर्थ हैं। इसके मूल पुरुष तीर्थों के तीर्थंकर हैं। पर कई बार उनकी विदाई के बाद तीर्थ निस्तेज पड़ने लगते हैं। परंतु भगवत्कृपा से आनेवाली युवा महंताई जो आ रही है वो सभी तीर्थों को पुन: वैसे ही सचेत और प्रकाशमय रखते हैं।

दूसरा प्रश्न, वो तीर्थ कैसा होता है? ऐसा होता है। कैसा होता है क्या? ऐसा होता है, जहां सभी वर्णों को रोटी खिलाते हो आदर के साथ, ऐसा होता है। जहां अपनों को ही भोजन कराते हो और दूसरों के लिए दरवाजा बंद होता है वो तीर्थ का लेबल है, लेवल नहीं! चौबीसों घंटे रोटी खिलाते हो आदर और सम्मान के साथ वो तीर्थ है। अब तीसरा प्रश्न, उस तीर्थ की यात्रा कैसे हो? वैसे बोटाद से भी आ सकते हैं। इधर सायला तरफ के रास्ते से भी आ सकते हैं। इधर जसदण, विंछीया और राजकोट की ओर से भी आ सकते हैं। इधर आप, लींबडी तरफ से भी आया जा सकता हो शायद। आपने पूछा नहीं है परंतु इतना तीन पाथेय लेकर आयेंगे तो तीर्थ समझ में आयेगा। और वो 'रामायण' में लिखा है-

जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ।।

मानसरोवर जैसा तो कोई तीर्थ नहीं है न साहब! मानसरोवर इस महान पर तीर्थ जाना हो तो तिब्बत की तरफ से जाते हैं। ये तो अमुक रास्ते अमुक लोगों ने बंद कर दिये। जो भी हो। पर कई ओर से जा सकते हैं। पर जायें किस तरह? वो मानस हो हिमालय का या 'रामचरितमानस' हो। ये महातीर्थ तो यहीं है आज बीच में, हमारे और आप के 'रामचरितमानस।' इस तक पहुंचने के लिए श्रद्धा का पाथेय लेना। पाळियाद तीर्थ, विहळानाथ पीर ये जो मुझे और आपको समझ में आयें और मैं और आप इसे समझ सके इसके लिए पहला पाथेय, कौन-सी हथरोटियां ले जाएंगे? कौन-सी सुखडी डिब्बा में भरकर गिरनार की परिकम्मा में ले जाएंगे? पाथेय चाहिए। तुलसी पाथेय बताते हैं। श्रद्धा वही पाथेय है। जो श्रद्धा का पाथेय लेकर आयेगा वो तीर्थ पहुंचेगा साहब! अपना काठियावाड, अपना देश इसका तो प्रत्येक गांव तीर्थ है। जहां रामजी मंदिर हो वह तीर्थ है। जहां कृष्ण मंदिर हो वो तीर्थ है। जहां महादेव का भले छोटा-सा ही मंदिर हो वो तीर्थ है। धर्मस्थानों में भजन हो ऐसा नहीं, जहां भजन हो वहां धर्मस्थान है। जहां भजन हो वहां धर्मस्थान है। जहां भजन और भोजन चलता हो वह धर्मस्थान है, वो सब तीर्थ है।

तीर्थों में कैसे जायें? कौन सा पाथेय लेंगे? श्रद्धा का पाथेय। पर तीर्थ में अच्छी संगत चाहिए। पाथेय साथ में लेना। सुखड़ी बनाई हो कि उसका रवा-रवा हो जाये, मुंह में डाले तब पानी-पानी हो जाये ऐसी सुखड़ी हो, हथरोटिया हो। तीर्थों की यात्रा में तो ये सब स्थूल हैं। पर तुलसी कहते हैं; श्रद्धा का पाथेय लेना है। पाळियाद तीर्थ है। विहळानाथ पीर है। ये तभी समझ में आयेगा जब श्रद्धा होगी। और वो भी श्रद्धा; अगर अंधश्रद्धा होगी तो नहीं समझ आयेगा। और आपका माना यदि नहीं हुआ तो वहीं का वहीं ये विहळानाथ वापस आपको काटने दौड़ेगा! पाथेय के साथ एक संगत भी होनी चाहिए, जानकार संग में हो। तो तुलसी कहते हैं कि तीर्थ की यात्रा करते समय श्रद्धा का पाथेय रखना चाहिए। और जो 'श्रद्धा संबल रहित' और 'नहिं संतन्ह कर साथ।' जिसने साधु का साथ नहीं किया उसको तीर्थ समझ में नहीं आयेगा। किसी साधु का साथ, किसी संत का संग वो तीर्थ का भान करायेगा; ऐसा 'मानस' में लिखा है। तीसरा, 'तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ।' जिसको राघव प्रिय न हो, जिसके साथ श्रद्धा का पाथेय नहीं है और जिसको साधु का संग नहीं होगा उसके लिए तीर्थयात्रा बहुत अगम है। अपने पास में ही तीर्थ होगा तो भी नहीं समझ आयेगा। इष्ट प्रिय होना चाहिए। परमतत्त्व प्रिय होना चाहिए।

शजर तब्दील हो गये पीर में।

शजर अर्थात् वृक्ष, पेड़, झाड़ साधु बन गए। जोगी हो गए झाड़। और अपने यहां तुलसी भी कहते हैं, 'संत बिटप

सरिता गिरि धरनी।' ये सब संत हैं। ये सब महापुरुष, इनमें वृक्षों का नाम है। 'वृक्षन से मत लें', ऐसा एक पद भी आता हैं। और भगतबापू, कागबापू भी कहते हैं, 'झाड़वां फळ नथी खातां उपकारी एनो ए आत्मा।' तो-

शजर तब्दील हो गये पीर में।
बहुत बारिश हुई कल गीर में।

-मिलिन्द गढवी

अपनी चर्चा है कि तीर्थों में श्रद्धा लेकर जाना चाहिए; तीर्थों में किसी साधु के संग जाना चाहिए; तीर्थों में अपना इष्ट प्रेम बरकरार रखकर जाना चाहिए। क्यों ऐसा तुलसी ने कहा? इष्ट प्रेम? तीर्थों में तो अलग-अलग मंदिर होते हैं, अलग-अलग देवता होते हैं; भिन्न-भिन्न पद्धति होती है। करबला भी तीर्थ है। मक्का-मदीना भी तीर्थ है। जेरुसलेम भी तीर्थ है। ये सभी तीर्थ हैं। परंतु हमें उन तीर्थों में श्रद्धापूर्वक जाना चाहिए। किसी संत को लेकर जाना चाहिए। हमें अपने इष्ट देव की भक्ति को संग लेकर जाना चाहिए। उसके लिए किसी दिन 'मानस' दुर्गम आ अगम नहीं रहेगा, सुगम होगा।

जो दूसरें की पीड़ा जान जाये वो पीर है। जो दूसरे की पीड़ा काटे वो पीर है। और दूसरे की पीड़ा काटने के बाद भूल जाये उसका नाम पीर है। मैंने उसकी पीड़ा दूर की, मैंने उसका दु:ख दूर किया, यह किसी बुद्धपुरुष को याद रहता है तो भी ये उसकी पीराई की कमी है। वो भूल जाएगा। उसको पता ही नहीं कि कैसे घटना घट जाती है! जो दूसरे की पीड़ा जानते हैं वो पीर हैं। दूसरे की पीड़ा काटते हैं उसका नाम पीर है। और पीर काटने के बाद वह बुद्धपुरुष, वो सद्गुरु फिर भूल जाता है। उसे ख़बर भी नहीं रहती। वो तो आगे-आगे चलता जाता है। सूरज की दिशा बदलती है वैसे उसकी परछाई पीछेपीछे घूमती चलती है। उसको पता ही नहीं चलता इस तरह उसके कदम-कदम पर कोई मंगल घटना घटती जाती है। उस पीर को पता ही नहीं चलता। वह तो आगे-आगे बढ़ता जाता है। पीछे क्या होता चलता है, उसको पता नहीं। ये सब पीराई के लक्षण हैं बाप!

अपने यहां पीराई का एक पूरा इतिहास है। इस्लाम धर्म में पीराई कहां से शुरू हुई और उसमें भी सूफ़ियों में पीराई कहां से आई? और सब से पहले हिंदुस्तान में कौन-सा पहला पीर आया, इन सब के ऐतिहासिक प्रमाण हैं। और उसमें ऐसा कहते हैं कि वो अजमेर की जो दरगाह है गरीबनवाज़, वह पहला सूफ़ी पीर अपने देश में आया; ऐसा एक इतिहास है। गरीबनवाज़ अर्थात् सद्गुरु। यह भाषा भेद है। सद्गुरु, बुद्धपुरुष ये सब पीर हैं। उसको मुस्लिम भाषा में आप पीर कहते हैं। अपनी भाषा में अपना महावीर कहते हैं। ये सभी पीर हैं। और मुझको तो 'रामायण' की ओर देखना होता है। तुलसीदासजी 'रामायण' को ही सद्गुरु कहते हैं। तुलसी 'रामायण' को ही बुद्धपुरुष कहते हैं। हमारे लिए तो 'रामायण' पीरों का पीर हैं। 'मानस' स्वयं पीर है। अभी तक एक साधु से साधक पूछ रहा था कि पीराई से भरे पीर के लक्षण कैसे होते हैं? ये सभी चर्चाएं, ये सभी संवाद व्यासपीठ ने आपके समक्ष रखा। आज हम जैसे 'मानस' के उपासक पीरों के पीर 'रामचरितमानस'रूपी पीर से पूछ रहे हैं कि हे 'मानस', आपकी दृष्टि से पीराई से भरे पीर के लक्षण कौन से हैं? और 'मानस' उसका जवाब देता है। पांच का रक्षण करे उसका नाम पीर। पांच को कभी आंच न आने दे उसका नाम पीर है। हम सब मूल में तो 'मानस-पीराई' की ही बात कर रहे हैं। संदर्भ बहुत लेती है मेरी व्यासपीठ पर केन्द्र में 'रामचरितमानस' है।

तो 'रामायण' कहता है कि पांच के प्राण की रक्षा करता है उसको पीर मानना चाहिए। आपको ख्याल होगा कि अपने वैदिक ग्रंथ, 'चरकसंहिता' आदि आयुर्वेद की चिकित्सा के जो मूल ग्रंथ हैं उसमें हमारे शरीर में रोग प्रगट होते हैं या तो अपना शरीर ठीक नहीं रहता उसके दो महत्त्वपूर्ण कारण बताए हैं। एक, अपने शरीर में वात, पित्त और कफ़ होता है उसकी सम्यक्ता जब टूटती है तब हमें रोग होता है। क्योंकि अपने शरीर में कफ़ जरूरी है। तो ही जीया जा सकता है। वात-वायु जरूरी है और पित्ततत्त्व भी जरूरी है। परंतु यदि अपनी मात्रा में हो तब। यदि उसकी मात्रा बढ़ती है तो हम बीमार पड़ते हैं। ये सब बढ़ जाता है तब हम बीमार पड़ते हैं। 'उत्तरकांड' में मानसिक रोग के वर्णन में तुलसी ने कहा है-

काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा।।

ये वात, पित्त, कफ़ का नियंत्रण जब नहीं रहता तब हम बीमार पड़ते हैं, ऐसा 'रामायण' कहता है, आयुर्वेद के ग्रंथ कहते हैं। ऐसा ही अपने आयुर्वेद के ग्रंथ में एक दूसरी बात कही है कि अपने शरीर में पांच प्राण हैं। व्यान, अपान, उदान, समान और प्राण। इन पांचों को वायु जरूरी है बाप! इन पांचों वायु में जब संगति नहीं रहती, तब कोई गड़बड़ी होती है; तब मनुष्य बीमार पड़ता है। अपान अपनी मात्रा में होना ही चाहिए। समान वायु अपनी मात्रा में होना ही चाहिए। ये पांचों हमारे शरीर में काम करते हैं। इन पांचों को संभालना चाहिए। नहीं तो शरीर रोगी बनता है। शायद मृत्यु भी हो, बेहोशी भी आये अथवा तो मनुष्य मृत्यु के कगार पर पहुंच जाता है इन पांचों में जब तकलीफ़ होती है तब।

'रामायण' में पांच प्राण हैं। एक प्राण है सुग्रीव; दूसरा प्राण है बंदर-भालू; तीसरा प्राण है लक्ष्मण; चौथा प्राण है भरत और पांचवा प्राण है माँ जानकी। ये पांच प्राण हैं। यह 'रामायण' एक विश्वरूप है, एक विश्वमानुषरूप है। उसके पांच प्राण रींछ-बंदर, सुग्रीव, भरत, लक्ष्मण और जानकी। ये पांचों प्राण जब मरने के करीब थे तब इन पांचों प्राण को बचाने का काम मेरे महावीररूपी पीरों के पीर ने किया। इन पांचों के प्राण 'रामचरितमानस' में हनुमानजी ने बचाया है। पीरों के, पीरों के, पीरों के, पीरों के और उसके पीर, इससे बड़ा कोई पीर नहीं ऐसे मेरे हनुमान ने पांचों के प्राण बचाये हैं। परंतु वैदिक ग्रंथों में लिखा कि समान और उदान ये दो वायु ऊपर के हैं। अपान और व्यान ये दोनों वायु कमर के नीचे के हैं। और बिलकुल मध्य में प्राण होता है। सुग्रीव और बंदर ये कमर के नीचे के प्राण हैं। इनमें कभी विषयों की दुर्गंध है। तुलसी का दर्शन तो आप देखें साहब! ये आदमी कितनी गहराई में गया हैं! सुग्रीव और बंदर अपने चरित्र की दृष्टि से बहुत महान चरित्र नहीं है। वे विषयी जीव हैं। परंतु लक्ष्मण और भरत ऊर्ध्व वायु हैं। वे समान और उदान वायु हैं। अपान और व्यान नीचे हैं। उदान और समान उपर के हैं। परंतु जानकी तो प्राण हैं। वो बिलकुल मध्य में प्राणवायु है। सीता हृदय है। वो दिल है। ये पांच। और तुलसी ने इन सब का आध्यात्मिक अर्थ किया है। इन अर्थों के बिना ये पीराई नहीं समझ आयेगी। इसलिए बहुत सरल करने की कोशिश कर रहा हूं कि इन पांचों प्राणों का रक्षण करता है उसका नाम पीराई से भरा हुआ पीर है। इसीलिए हनुमान पीरों के पीर हैं, महावीर हैं। 'रामचरितमानस' में राम रघुवीर हैं और हनुमान महावीर हैं। तुलसी लिखते हैं-

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

संदर्भ भेद से 'रामायण' में पांचों का प्रगट-अप्रगट दर्शन है। उनके अर्थों को आप को बदलना पड़ेगा गुरुकृपा से। तो ये अपान की चर्चा, समान की चर्चा, प्राण की चर्चा, उदान और व्यान की चर्चा तुलसी ने प्रगट-अप्रगट रूप से की है। 'तासु तेज समान प्रभु आना।' रावण मरा उसका तेज प्रभु में समा गया। सीधा अर्थ ये है। पर यहां समान वायु का उल्लेख हुआ है। रावण जैसा अधम इन्सान उसका ऊर्ध्वगमन हुआ है। राम के चरण में नहीं समाया रावण का तेज। इसलिए वहां जो ऊर्ध्वगमन कर सके वो समान वायु का उल्लेख है। उसको वहां पहुंचाने की बात है। 'बिसरे हुँ सबहुँ अपान।' राम और भरत के मिलन के समय सुगंध ही सुगंध थी। अपान मानो खत्म हो गया। विशुद्ध प्रेमपूर्ण स्थिति; मानो दो पूर्ण प्रेमियों का मिलन हुआ। खुश्बू ही खुश्बू। परंतु वहा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार चारों खत्म हो गये। किसको पता कि क्या हो रहा है? ऐसी विशुद्ध अवस्था का, ऐसा भी उल्लेख है, अपनापन बिसर गया ये भी है और ऊर्ध्वगमन का वायु है वो भी चला गया। ऐसा गुरुमुखी 'रामायण' में उल्लेख है। प्राणतत्त्व बीच में है सीता। इन पांचों को मेरे हनुमान रक्षण करके बचाते हैं।

तो बाप! ये तो 'रामायण' के पात्र हैं। लीला में हनुमानजी ने पांचों को बचाया है। वैदिक ग्रंथों ने इन पांचों की हमारे आरोग्य के लिए चर्चा की है। ये सब संदर्भ इन्हें मूल बात करने के लिए अगल-बगल से लिया। मूल कहना यही है कि ये पांच प्राण क्या हैं? भरत से लेते हैं। इस भरत का रक्षण हनुमान ने किया। भरत कौन है? भरत अर्थात् क्या? भरत अर्थात् विशुद्ध प्रेम। अपने हृदय में किसी परमतत्त्व की ओर, किसी महापुरुष की ओर, किसी नाम की ओर, किसी रूप की ओर, किसी धाम की ओर, किसी परमात्मा की लीला की ओर अत्यंत प्रेम जगता है। पर हम सब संसारी हैं। हमारा भाव, हमारा प्रेम सम-अधिक होता रहता है। और कभी-कभी हमारे धारणानुसार नहीं होता तब हमारी भावनाएं मरने लगती हैं। इतना नाम लिया, कुछ हुआ नहीं! इतनी बार हम धाम में गए, फलाना धाम में गए, चित्रकूटधाम, अयोध्याधाम, वृंदावनधाम, काशीधाम, वहां गए फिर भी हमारे पाप नहीं गए। ऐसी जो हमारी फीलिंग्स है, जो मृत होती जाती है तब पीरों के पीर हनुमान जैसा कोई सद्गुरु हमें बचा लेता है। ये हैं पीर। जब हमारा प्रेम कमज़ोर पड़ने लगे, जब हमारी परमतत्त्व की भावनाएं कमज़ोर होने लगे तब किसी पीर की जरूरत पड़ती है। जिसमें नखशिख पीराई भरी हो वो हमें वापस मज़बूत बनाता है।

तो हमारे प्रेम को, हमारे हृदय की भावनाओं को मृत होने से बचाता है पीर। भरत के प्रेम को मरने से बचाया है, टूटने से बचाया है तो वो पीरों का पीर हनुमान है। वो हमारा पीर है। अब लक्ष्मण; लक्ष्मण अर्थात् जागृति। जिन्होंने नियम लिया था। उसको नेम भी हम कहते हैं। नियम भी कहते हैं। अपनी भाषा में लक्ष्मण का नेम टूटा, प्रण छूटा। उनका प्रण था चौबीस घंटे जागते रहने का। उनको इन्द्रजित ने ऐसा बाण मारा कि लक्ष्मण को सुला दिया। लक्ष्मण की पीड़ा ये है कि उनका नियम टूट गया। नारी और नींद को छोड़ देने का जिन्होंने नियम लिया था, टूटा। इन्द्रजित का बाण लगा और लक्ष्मण एकदम दिन में ही सो गये, मूर्च्छित हो गये। आध्यात्मिक अर्थ में नहीं जाना है। पर स्पष्टीकरण तो 'विनयपत्रिका' में आया है।

कामदेव ऐसा है कि लक्ष्मण जैसे को भी धोखा खिला दे, उसको मूर्च्छित कर दे। ये काम की ताकत है। मुझको ऐसा समझ में आया है कि काम के प्रहार से वही बचता है जिसका भजन अधिक है। भजन बिना नहीं बच सकते साहब! अंतिम घड़ी में भजन बचाता है। बाकी जो ऐसा कहता है कि हमारा कुछ नहीं कर सकता उसको 'रामायण' में पछाड़ा है।

पीरों का पीर क्या कहता है? पीराई के लिए तीन बातें ही अंत में। मेरे स्वभाव अनुसार, मेरे अनुभव के अनुसार। पीरों का पीर मुझको और आपको तीन वस्तु ही समझाता है। सत्य, प्रेम और करुणा ये पीर। पूर्णाहुति में मुझको ये तत्त्व कहना है। हमने सत्य को समझा ही है कहां यार! दूसरे का सत्य गलत कर देते हैं! ऐसी जीद्द छोड़े। जिधर दो-दो अहंकार इकठ्ठे हो उसका कोई परिणाम नहीं निकलता। ये शंकर भगवान का धनुष, इतने सारे राजा इकठ्ठे हुए थे जनकपुर में। क्यों कोई तोड़ नहीं सका? क्योंकि तुलसी कहते हैं, उन राजाओं को अभिमान था। और शंकर इतना बड़ा विश्व का अहंकार; छोटे-छोटे अहंकार बड़े अहंकार को तोड़ नहीं सकते। इसमें अपना ही पतन होगा। अहंकार को तो वही तोड़ सकता है जिसने भजन करके अहंकार का त्याग किया हो। ऐसा कोई राम ही धनुष को तोड़ सकता है। बाकी किसी का काम नहीं है। प्रेम के अंतिम क्षण में, पीरों का पीर हमें बचाता है। वो पीराई है। और अपना नियम टूटने की कगार पर हो तब हनुमान आकर हमारे नियमों को बचाता है; हम को जागृत करता है; हमें मूर्छा में से फिर खड़ा करता है। तो हमारे प्रेम को बचाये, हमारे नियम को बचाये, उसका नाम बुद्धपुरुष है। पीरों का पीर है। वो अधोवायु सुग्रीव। सुग्रीव को तुलसी ने 'विनयपत्रिका' में ज्ञान कहा है। 'विनयपत्रिका' में कहा है कि सुग्रीवरूपी ज्ञान ने सेतु बांधा था। और तुलसी ने कहा, ज्ञान का मार्ग ये कृपाण की धार है। मनुष्य को गिरते देर नहीं लगती। ज्ञान हमारा चाहे जितना हो पर उसमें भी धोखा हो जाता है। तब ये सुग्रीव 'राम काज सुग्रीव बिसारा।' बड़ी से बड़ी समझ खो बैठा था। और जब उसका मरना आया तब हनुमानजी बचाते हैं। जब मनुष्य को ज्ञान का अहंकार आता है, ज्ञान का घमंड बंधन में डालता है, पतन करता है ये बड़े से बड़ा विघ्न है। कभी ओवर नोलेज, आध्यात्मिक ज्ञान, जैसा इन्सान अपने आप को मानता है, ऐसी ज्ञान की दशा हो तब तुलसी कहते हैं, यदि किसी पीर का आश्रय करेंगे तो वो बच जाएगा। और उसे बचानेवाला मेरा हनुमान पीरों का पीर है जिसने सुग्रीव को बचाया है।

तो इन पांच का रक्षण करता है वो पीर। चौथा तत्त्व रींछ और वानर। तुलसीदासजी ने 'विनयपत्रिका' में जो मनुष्य भजन करता है, जो साधन है, कोई बेरखा फेरता है, कोई माला फेरता है, कोई तिलक करता है, कोई पूजापाठ करता है, कोई ध्यान करता है, छोटे-बड़े हमारे और आप के साधन हैं, उसको रींछ और वानर कहा है। तुलसी दर्शन है ये। हमारे छोटे-बड़े साधनों द्वारा अब सिद्धि नहीं मिलती। हमारी भूख-प्यास, हमारी कामनाएं अधिक भड़क उठती हैं। हमारी एषणाएं अधिक प्रबल बनती हैं और तब हमारे छोटे-बड़े साधन जब ऐसी एषणाओं के वशीभूत होते हैं तब हम मरने लगते हैं। ऐसे समय भी पीरों का पीर हनुमान मुझको और आपको बचा सकता है। और पांचवां तथा अंतिम तत्त्व जानकीजी, ये तत्त्व हैं प्राण। जानकी अर्थात् भक्ति। जानकी के तीन अर्थ है 'रामायण' में। जानकी अर्थात् भक्ति। सीता अर्थात् भक्ति। शंकराचार्य भगवान ने कहा, सीता अर्थात् शक्ति। हमारे और आपके अंदर की शक्ति, भक्ति अथवा शांति वह जब व्याकुल बन जाती है, ऐसा लगता है कि अब शांति रखना मुश्किल है, शक्ति तीक्ष्ण होने लगे और भक्ति शिथिल पड़ने लगे तब हनुमान जैसा कोई बुद्धपुरुष, प्रबुद्ध पुरुष, सद्गुरु अथवा तो पीरों का पीर हमारा रक्षण करता है, हमारी भक्ति को बचाता है, हमारी शांति को अखंड बनाता है। रामकथा का ये दर्शन है कि पांच का रक्षण करे, हमारे प्रण का रक्षण करे, हमारे विवेक का रक्षण करे, हमारे छोटे-बड़े भजन के साधनों का रक्षण करे और हमारी शांति, शक्ति और भक्ति को बचा ले वो पीरों का पीर हनुमान है। अर्थात् पीर की एक व्याख्या, हमारी पांच वस्तु को बचाए उसको पीर समझना चाहिए।

गतकल और उसके पहले के दिन कथा का क्रम लिया तब भगवान विश्वामित्र अयोध्या आते हैं। महाराजाधिराज अधिपति ने उनका स्वागत किया, पूजन किया। विश्वामित्र को भोजन कराया है। विश्वामित्रजी से दशरथजी ने कहा, आप पधारें, बहुत कृपा की महाराज। मैं आपकी क्या सेवा करूं? विश्वामित्रजी ने कहा, महाराज, असुर मेरी साधना में विघ्न डालते हैं। ये लक्ष्मण जो छोटा है उसके साथ मुझको राम दे दीजिए। राक्षसों का उद्धार होगा और मैं सनाथ होऊंगा। विश्वामित्र राम को इसलिए लेने आये कि राम समस्त विश्व के हो सके, समस्त विश्व के मित्र बने। यह एक ऐसी हवा है कि आप उसे अपने आंगन में कैद नहीं कर सकते। मुझको ये बात बहुत अच्छी लगती है। भारत का साधु, भारत का तपस्वी, ऋषि किसी दिन किसी से संपत्ति नहीं मांगता था। मांगता तो राष्ट्र की रक्षा के लिए गृहस्थ की संतति ही मांगता था। वशिष्ठजी ने कहा कि राजा, संदेह छोड़िए। आप का भाग्य है कि ये बालक आपके यहां आये। बाकी ये आपके नहीं है, समस्त संसार के हैं, वशिष्ठजी ने राजा का संदेह तोड़ा और गुरु ने जब कहा, दे दीजिए तो राजा कुछ नहीं बोले। ठीक है बापजी। गुरु वचन, बात खत्म।

दोनों पुत्र विश्वामित्र के साथ यात्रा का आरंभ करते हैं। मेरी व्यासपीठ हमेशा कहती रही है कि विश्वामित्र जब दशरथजी के यहां आये तब वो तो तपस्वी हैं, उनके पास वाहन नहीं हैं। वो तो पैदल आये हैं अयोध्या, पर जब राम-लक्ष्मण को लेकर जाते हैं तब तो दशरथजी का फ़र्ज़ था कि रथ भेजते कि बाप, आप रथ ले जाइए। पर रथ नहीं भेजा है। इसका एक कारण शायद विश्वामित्र का व्रत होगा कि जब तक यज्ञ पूरा न हो तब तक हम वाहन में नहीं बैठेंगे। और गुरु यदि वाहन में नहीं बैठेंगे तो शिष्य नहीं बैठ सकता वाहन में। अथवा तो रामजी ने संकेत किया होगा ईश्वर के रूप में कि मुझको नंगे पैर ही जाना चाहिए क्योंकि मैं रथ में बैठकर गतिपूर्वक निकल जाऊंगा तो रास्ते में आनेवाली अहल्या का उद्धार कौन करेगा? तिरस्कृत, वंचित, पतित इसका कल्याण करना है तो मुझको पदयात्रा करनी चाहिए। ये गांधी की पदयात्रा हो या दुनिया में किसी भी महामानव की पदयात्रा हो, इस पदयात्रा का आदि आदर्श भगवान राम हैं यह नहीं भूलना चाहिए। दोनों भाई विश्वामित्र के साथ विश्वामित्र के आश्रम की ओर गति करते हैं। उस छबि को तुलसीदासजी चौपाई में उतारते हैं कि कैसा दृश्य था वो?

अरुन नयन उर बाहु बिसाला।
नील जलज तनु स्याम तमाला।।
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई।
बिस्वामित्र महानिधि पाई।।

अरुन के दो अर्थ होते हैं, अरुन अर्थात् लाल और अरुन अर्थात् कमल। राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ जा रहे हैं तब तुलसी उस छबि का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राम कैसे हैं? तो 'अरुन नयन।' वैसे तो रसिक ग्रंथों में प्रेम का रंग लाल रहा है। अर्थात् राम के नेत्र प्रेम से भरे हैं अर्थात् लाल है। खीज़ में लाल नहीं हैं! लोगों के नेत्र लाल होते हैं तीन-चार बार। एक आदमी बहुत रोये तब आंखें लाल हो जाती हैं। एक आदमी की आंख में जब बहुत प्रेम छलकता है, करुणा जागती है तब उसकी आंखें लाल हो जाती हैं। और चौथा एक कारण है आंखें लाल होने का जो आदमी पी लिया हो! थोड़ा डाल लिया हो तो भी उसकी आंखें लाल होती हैं।

दो-तीन बार पहले भी कहा है, बावा जाये इससे पहले विनती करता जाये अभी भी कि पीर के स्थान पर जो रामकथा, जो स्वयं पीरों का पीर है, ऐसी कथा सुनी है तो जो भी कुछ अनाप-सनाप पीते हो तो बंद कर दीजिएगा। इसमें से बाहर निकलना। व्यसनों को प्रतिष्ठा नहीं मानना चाहिए। व्यसनों को बरबादी मानना चाहिए। हम को तो पीना ही चाहिए, ऐसा गलत अर्थ नहीं करे। तलगाजरडा नहीं कहेगा तो कौन कहेगा? क्योंकि आपने हमें असली घी खिलाया है। और असली घी आपने खिलाया है तो असली बोल बोलना मेरा धर्म है। आपके मुंह बिगड़े तो बिगड़े! कल बारह बजे बावा निकल जाएगा! आंखें लाल रखनी हो तो प्रेम से रखना। आंखें लाल रखनी हो तो दूसरे की पीड़ा देखकर विह्वळ की भांति आप विह्वल होकर आप रो लेना। बाकी जैसा-तैसा पीकर आंखें लाल नहीं करना चाहिए। हम सब क्षत्रिय कुल के बंदे हो तो लाल आंख रखना पर प्रेम में। लाल आंख रखना पर किसी की पीड़ा में उसको पता न चले इस तरह दो आंसू गिराकर। अमुक ज्ञाति में सामर्थ्य अधिक है, पर मार्ग थोड़ा गलत ले लिया है और इससे कमज़ोरी आ गई है। इसमें से हम बाहर निकले साहब! कितना बड़ा काम होगा! मेरे राम के नेत्र लाल हैं, कमल जैसे असंग। कमल जैसे नेत्र पर कैसे नेत्र? विशाल नेत्र। समाज की दृष्टि विशाल होनी चाहिए, संकीर्ण नहीं, लघु नहीं। दृष्टिकोण विशाल होना चाहिए। कुछ वस्तुओं को यहां विशाल बताया है। आंखें विशाल, भुज विशाल, हृदय विशाल। ये तुलसी हैं, ये तुलसी हैं, ये तुलसी हैं। जिसको आचार्य बनने का कोई मोह नहीं; जिसको आश्रम बनाने का कोई मोह नहीं है; जिसको कोई पीठाधिपति होने का मोह नहीं, जिसको कोई मठाधिपति बनने का मोह नहीं है। ये वचन तुलसी के हैं।

'रामायण' में पांच प्राण है। एक प्राण है सुग्रीव; दूसरा प्राण है बंदर–भालू; तीसरा प्राण है लक्ष्मण; चौथा प्राण हैं भरत और पांचवां प्राण है माँ जानकी। ये पंच प्राण हैं। इन पांचों प्राणों को बचाने का काम मेरे महावीररूपी पीरों के पीर ने किया। और तुलसी ने इन सब का आध्यात्मिक अर्थ किया। इन पांचों प्राणों का रक्षण करे उसका नाम पीराई से भरा पीर। अर्थात् हनुमान पीरों का पीर हैं, महावीर हैं। रामकथा का ये दर्शन है कि पांच का रक्षण करता है उसको पीर कहते हैं। हमारे प्रेम का रक्षण करे, हमारे नेम का रक्षण करे, हमारे विवेक का रक्षण करे, हमारे छोटे–बड़े भजन के साधनों का रक्षण करे और हमारी शांति, शक्ति और भक्ति को बचा ले वो पीरों का पीर हनुमान है।

मेरा और आप का समाज नेत्रों को विशाल रखे; दृष्टिकोण विशाल रखे। हम कितने लघु हो गये हैं! हमारी आंखें छोटी हुई हैं। हमें अधिक दिखता ही नहीं। बाहर निकले। और इसमें क्षत्रिय तो खास! दिगुबापु, गंभीरसिंह, मुझको इतना तो कहने का अधिकार है ही न साहब! क्योंकि आपके बाप के बाप जो सूरज हैं न उनका गुणगान गाते हैं। ये कोई पुस्तक लेकर आपका गुणगान गाने नहीं आये हैं! न ही कोई दक्षिणा चाहिए, न तो कोई नाम लिखना है! मुझे आश्रितों की लिस्ट तैयार नहीं करनी है। पर बाप! आप का नाम रोशन है, वही प्रताप समझाने आया हूं। सूर्यवंश, मैंने सूरजदेवळ की कथा में कहा है वर्षों पहले कि मैं कहने का अधिकारी हूं कि आपके कुल की गाथा तलगाजरडा गा रहा है। सूर्यवंश की ये कथा, दिनकरवंश की ये कथा, मेरे राघव की कथा है। उसका दृष्टिकोण बड़ा होना चाहिए। दूसरा क्या बड़ा होना चाहिए? उर। हृदय की भावनाएं बड़ी होनी चाहिए। छाती इतने ईंच की कि इतने ईंच की, रखो मापदंड! जो गलत विवाद लोग खड़ा करते हैं कि इतने ईंच की कि इतने ईंच की छाती! उसे छोड़ो। हृदय विशाल होना चाहिए।

कैसे हैं दोनों भाई? सुंदर धनुष-बाण हाथ में धारण किये हैं। एक श्याम और एक गौर दोनों भाई। विश्वामित्र को हुआ कि आज मुझको महानिधि प्राप्त हुई है। योग्य आश्रित गुरु की महान संपदा है। इतने में ताड़का निकली है। विश्वामित्र ने संकेत किया। विश्वामित्र ने राक्षसों के लिए संकेत नहीं किया। तीन स्त्रीयों के लिए विश्वामित्र ने पूरी यात्रा में संकेत किया। एक ताड़का के लिए, एक अहल्या के लिए, एक जानकी के लिए। 'उठहु राम', अब खड़े हो जाओ। जानकी के लिए। विश्वामित्र को राक्षस बहुत बिगड़े हैं तो उनकी कोई चिंता नहीं है। जिस समाज की स्त्रियां बिगड़ जायें उस दिन मुश्किली खड़ी होगी। इससे तीन प्रकार की स्त्रियों का रक्षण करने के लिए, इसलिए पहले ताड़का के लिए कि ये भूमिका खत्म होनी चाहिए। जहां से ये आसुरी तत्त्व आते हैं उन आसुरी तत्त्वों के मूल का आप निर्वाण कर दीजिए। दूसरी अहल्या जो पतित है, समाज ने उस पर अंगुली उठाई है। महाराज, उसे स्थापित कर दीजिए। स्त्री, महिला सशक्तिकरण की जो अपने यहां बातें चल रही हैं, मेरे राम ने आदि काल से ये कार्य किया। ये था स्त्री सशक्तिकरण। जिसको समाज ने ठोकर मार दिया उसको पुन: स्थापित कर दिया। पुरुष की बहुत चिंता नहीं की विश्वामित्र ने; जगत की मातृशक्ति की चिंता की है। इसीलिए ताड़का के निर्वाण की बात है, अहल्या के पुन:स्थापन की बात है और जानकी के लिए धनुष तोड़ने का आदेश है, ये तीन वस्तु। क्योंकि माताओं पर अपना ये पूरा समाज टिका हुआ है। बहुत से समाज जो गौरव लेते हैं न आज इक्कीसवीं सदी में, ये नहीं भूलना चाहिए कि घर के कमरे को ओढ़कर जो माताएं बैठी हैं न उनके प्रताप से देश महान हैं। जो अंदर बैठी है जगदंबाएं, माताएं। अर्थात् तीन प्रकार के स्त्री वर्ग को एक अलग ही प्रकार से इस विश्व को उजागर करने के लिए विश्वामित्र ने संकेत दिए। राघव, ये ताड़का है, ये भूमिका है। इससे जो आसुरी तत्त्व खड़े होते हैं, उस भूमिका को निर्वाण दीजिए कि आसुरी तत्त्व प्रकट होना बंद हो जाएं। प्रभु ने ताड़का की ओर देखा तभी ताड़का की आसुरी वृत्ति हरि में लीन हो गई। ताड़का के प्राण मेरे हरि में लीन हो गए। उद्धार कर दिया। विश्वामित्र को भरोसा हुआ, यही ब्रह्म हैं। केवल मारे वो ब्रह्म नहीं। मारे और तारे भी; उसका नाम ब्रह्म है। एक रात्रि पूरी हुई। दूसरे दिन सुबह विश्वामित्र ने यज्ञ का आरंभ किया। यज्ञ का धुंआ आकाश में गया तब तो वो सुबाहु और मारीच आ गये! भगवान ने फन बिना का बाण मारकर मारीच को सतजोजन दूर सागर किनारे लंका फेंक दिया। सुबाहु को प्रभु ने अग्नि का बाण मारकर उसको भस्मीभूत कर दिया। ऋषि का यज्ञ पूरा हुआ।

थोड़े दिन राम-लक्ष्मण विश्वामित्र के यहां यज्ञ में रूके। और फिर विश्वामित्र ने कहा, राघव, भगवन्, मेरा कार्य पूरा हुआ। पर मेरी ऐसी इच्छा है कि यज्ञ की रक्षा करने के लिए ही आप निकले हैं तो अभी एक यज्ञ रास्ते में पड़ा है। जनकपुर जायें तो रास्ते में एक यज्ञ है। और वो यज्ञ है अहल्या का यज्ञ, प्रतीक्षा का यज्ञ। और तीसरा जनकपुर में धनुषयज्ञ है। धनुष यज्ञ को सुनकर प्रभु हर्षित होकर मुनि के साथ यात्रा आरंभ करते हैं। रास्ते में अहल्या का उद्धार करते हैं। भगवान गंगा में स्नान करके जनकपुर पहुंचे। जनकराजा को ख़बर हुई तो सभी को लेकर विश्वामित्र का स्वागत करने आये। विश्वामित्र का स्वागत करके, राम को देखकर जनक जैसा तत्त्ववेत्ता भी थोड़ा स्तंभित हो गया कि ये कौन है? मुझको इतना अधिक प्रेम इसकी तरफ क्यों उमड़ रहा है? मैं तो विदेह हूं। देह में होकर भी देहातीत हूं। इस बालक को देखकर मुझको इतना अधिक प्रेम क्यों जग रहा है? विश्वामित्र कहते हैं, जनक महाराज, दुनिया में समस्त जड़-चेतन प्राणी सृष्टि को यह प्रिय लगेगा ऐसा तत्त्व हैं। स्वागत किया है। सब को लेकर जनकराजा ने सदन में 'सुंदरसदन' में ठहराया है। 'रामकथा' में लिखा है कि दोपहर का भोजन हुआ और फिर थोड़ी देर विश्वामित्र आदि सभी ने विश्राम किया। मैं भी आपसे कहता हूं कि आप सब भी यहां से अनुशासन रखते हुए भोजन कीजिएगा और भाग्य में विश्राम लिखा हो तो कीजिएगा, नहीं तो मेले में चकडोल चढ़ियेगा!

जानकी पीराई है और राम पीर हैं

'मानस-पीराई', जो इस नव दिवसीय कथा का केन्द्रीय विचार रहा, जिसका हम सब विचार कर रहे हैं। थोड़े अंतिम सूत्र। ये सब तो अनंत है। इसको पूरा नहीं कर सकते। पर देशकाल आधीन हम सबकुछ समय में समेटते हैं तब अंतिम सूत्रों की थोड़ी चर्चा कर लें। और फिर कथा को संक्षेप में विराम की तरफ ले जाऊं। इससे पहले जो बात मुझको आपसे कहनी है उसके लिए थोड़ी कथा पहले कह दूं। बाकी की कथा बाद में मैं कहूंगा। गतकल की कथा में भगवान राम और लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र जनकपुर में पधारते हैं और 'सुन्दरसदन' नामक प्रासाद में, एक भवन में उनको राजा जनक ठहराते हैं। सबने दोपहर को भोजन किया। विश्राम किया। सांझ के समय भगवान राम नगरदर्शन के लिए जाते हैं। बहुत बार कहा गया है कि मिथिला के राम की उम्र के कुमार युवक जिस भवन में राम ठहरे हैं उसके द्वार पर राम से मिलने के लिए, राम के दर्शन के लिए, राम के साथ बातचीत करने के लिए, राम को स्पर्श करने के लिए मानो टकटकी लगाए खड़े थे। लक्ष्मण जीवधर्म के आचार्य कहलाते हैं। इसलिए उनको इन जीवों की पीड़ा समझ में आ गई। और ऐसा हुआ कि किसी भी तरह से ये लोग अंदर नहीं आ सकते हैं। मुझे भगवान राम को बाहर ले जाना चाहिए। किसी भी क्षेत्र का बड़ा आदमी, उससे छोटे आदमी मिल नहीं सकते ऐसे समय में श्रेष्ठ लोगों को उसके पास जाना चाहिए। यह 'रामायण' का दर्शन है। मूल बात तो इतनी ही थी कि हमको जो लोग मिल नहीं सकते उनसे किसी भी तरह राम को मिलने जाना चाहिए। इसी बहाने भगवान राम और लक्ष्मण बाहर आते हैं। कुमारों से मिलते हैं। ये सभी युवक भगवान राम को स्पर्श करते हैं। नगर दिखाते हैं और सांझ को नगर देखकर वापस आते हैं। रात्रि का भोजन हुआ।

दूसरे दिन गुरु की पूजा के लिए फूल लेने पुष्पवाटिका में जाते हैं, वहां सीता और राम का प्रथम मिलन तुलसी ने बताया है। और फिर राम सीता को समर्पित। सीता राम को समर्पित। और फिर जानकीजी ने मंदिर में जाकर राम की स्तुति की। पार्वती ने आशीर्वाद दे दिया कि जानकी, तुमको राम मिलेंगे। गौरी स्तुति करके जानकी भवन में पधारी। रामजी फूल लेकर आये। गुरु की पूजा की। बाद के दिनों में धनुषयज्ञ की कथा आती है और राम-लक्ष्मण विश्वामित्र और मुनियों के साथ धनुषयज्ञ में गये। तमाम राजा-महाराजा आये हैं। सभी अहंकारी है। शंकर का धनुष भी अहंकार का प्रतीक है। अहंकार अहंकार नहीं तोड़ सकता। अहंकार को तोड़ने के लिए तो निराभिमानी होना पड़ेगा। कोई धनुष नहीं तोड़ सका। अंत में एक धनुष भंग करते हैं। जानकी जयमाला पहनाती है। लग्न निश्चित होता है। बीच में परशुराम आते हैं। परशुराम अवकाश प्राप्त करते हैं। महाराज दशरथ बारात लेकर आते हैं और मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को एक ओर जानकी का और साथ ही साथ लक्ष्मण-ऊर्मिला, भरत-मांडवी, श्रुतकीर्ति और शत्रुघ्न,

सभी का विवाह होता है। राम अयोध्या आये। चार राजकन्याएं, पुत्रवधुएं आयी तब अयोध्या की समृद्धि बढ़ने लगी। दिन बिते। मेहमानो ने विदाई ली। अंत में विश्वामित्र महाराज ने भी विदाई ली तब राजपरिवार सजल नेत्र खड़ा रहा कि हे तपस्वी महात्मा, अयोध्या की सभी संपदा आपकी है। हम तो केवल आपके सेवक हैं। कुछ नहीं चाहिए। आपने तो कितना दिया है? अब क्या मांगे आपसे? पर आपको अपने भजन से जब अवकाश मिले, कभी हमारा स्मरण हो तो बार-बार अयोध्या आकर हमें दर्शन दीजिएगा। 'बालकांड' पूरा होता है।

आगे की कथा तो मैं आपको बहुत जल्दी में कह देनेवाला हूं, परंतु अभी जो कहा उसका कारण ये है कि मुझको पीराई के लक्षण कहने है। जिसमें नखशिख पीराई भरी हो उसमें कैसे लक्षण होते हैं? हमारे और आपके आंतरिक विकास के लिए, हमारी आंखें थोड़ी खुले इसके लिए हम सब नौ दिन से इस पीराई की चर्चा कर रहे हैं। मैं बार-बार बीच-बीच में कहता रहा कि राम पीरों के पीर हैं अर्थात् राम पीर है। और जानकी पीराई, सीता पीराई है। ध्यान दीजिएगा, पीर और पीराई का संबंध जल-तरंग जैसा रहना चाहिए, शब्द और अर्थ जैसा रहना चाहिए। जिस दिन पीराई इस दिशा में अन्यत्र जाये और पीर उधर जाये, उस दिन समझना कि केवल शब्द आडंबर है। उसमें प्राण नहीं है। यद्यपि जानकी परांबा है। उससे ऊपर कोई नहीं है। वो पीराई की, पीराई की, पीराई की, पीराई की, पीराई है, जगदंबा है। और राम पीरों के, पीरों के, पीरों के पीर है।

कल मैं गढडा दर्शन करने गया था स्वामीनारायण मंदिर में। और उसके जो मुख्य स्वामी, क्या नाम है? एस. पी. स्वामी, उनका आमंत्रण था और मुझको भी अच्छा लगता है। इसलिए पहले रामजी मंदिर में दर्शन करने गया कि जहां पहले सहजानंदबापा गढडा में रहते थे तब रामजी मंदिर की रोटी खायी थी। तब रात को रुके थे और रामानंदी परिवार ने खूब आशीर्वाद दिया था। जो बात थी, जो हकीकत थी, इतिहास है। फिर मैं गया तब स्वामीजी बहुत प्रेम से और निखालिस मुझको समझा रहे थे कि बापू, मूल तो ये राधा-कृष्ण की मूर्ति है। गोपीनाथ महाराज और राधा-कृष्ण की मूर्ति, बगल में गो मूर्ति है कि सहजानंद स्वामी जब तिरोहित हुए, धाम में गए फिर पधराई गई है। बाकी मूल स्वामीनारायण भगवान, सहजानंद स्वामी ने स्वयं बैठकर स्वयं माप ले लेकर भगवान श्यामसुंदर और श्री राधिकाजी की मूर्ति; हमारे इष्टदेव है राधाकृष्ण। मुझसे कहे, बापू, ये तीन मूर्ति है न वो मूल राम-लक्ष्मण-जानकी ही है। आप देखिए कि मूर्ति का हाथ ऐसे हैं। हमारे सभी पुराने मंदिरों में रामजी की मूर्ति ऐसी है, क्योंकि उसमें हम धनुष-बाण देते। हाथ ऐसे ही होता है। स्वामीजी ने मुझको कहा कि बाद में हमारा विचारभेद हुआ होगा उस समय। जो हो वो, हमें उसमें कहीं जाना नहीं है। पर बाद में कुछ ऐसा हुआ कि ये राम की मूर्ति नहीं है! पर हाथ कहता है कि राम है, इसका क्या करें? मूल तो राम-लक्ष्मण-जानकी।

तो मेरे कहने का ये अर्थ है कि राम तो पीरों का पीर है, सूर्यों का सूर्य है। पर इस समय मैं कहूं कि राम पीर हैं तो माँ जानकी पीराई है। राम श्लोक है तो चौपाई मेरी माँ जानकी है। राम श्लोक है, ब्रह्म है, श्लोक आकाश से ऊतरता है। और चौपाई निकली है तो हंमेशा धरती से ही निकली है। ये दोनों का अंतर और साम्य है। श्लोक जब-जब ऊतरा तब हंमेशा आयातों की तरह, ऋचाओं की तरह। मेरा राम जब भी आया तब धरती से नहीं निकला, दिशाओं से नहीं निकला। कौशल्या को भी पता नहीं चला! अर्थात् रामतत्त्व आकाश में से; ऊंचाई और धरती पर हमारे पैर टिका रहता है न ये दोनों साथ होते हैं, उसमें ही पीराई आती है। धरती यदि छूट जाए तो पीराई नष्ट हो जाएगी। इसलिए इसे कथा में बहुत जवाबदारीपूर्वक कहता हूं कि राम पीर है, तो पीराई मेरी माँ जानकी है। अब पीराई कहता हूं तो जानकी अर्थात् क्या? पवित्राई। जानकी अर्थात् पवित्राई। कैसी पीराई? कैसी पवित्राई? उसके जैसा कोई पवित्र नहीं है। दूसरा शब्द 'चरित्राई।' जानकी अर्थात् चरित्र। पीराई तो चरित्र की होती है। पीराई तो पवित्राई की होगी। प्रताप और चमत्कार वो जो बुद्धि से बाहर है, वह एक अलग विश्व है। उसे मैं स्वीकार करता हूं पर जिससे लोक में अंधश्रद्धा फैले, ऐसे प्रताप और चमत्कार के पक्ष में मैं किसी दिन नहीं रहूंगा।

ये विहामणबापा, ये पूरी परंपरा, कितने लोगों को इसका अनुभव हुआ है! बड़े से बड़ा प्रताप है हमारी पवित्राई। बड़े से बड़ा चमत्कार है हमारी चरित्राई। बड़े से बड़ा प्रताप है हमारी अखिलाई। बड़े से बड़ा प्रताप है हमारी नम्रताई। और बड़े से बड़ा प्रताप है हमारी धरित्राई। ये पांच लक्षण मेरी माँ जानकी के हैं। इसीलिए उसे मैं पीराई कहता हूं। सभी नये शब्द हैं ये। धरित्राई अर्थात् इस धरती की लड़की। उसने कितना सहन किया! अत्यंत सहन करना पड़े तब इसी तरह बिलकुल न हिले, वो पीराई। जिसका कोई ग्रूप नहीं हो। अखिलाई का जो स्वागत करे उसका नाम पीराई है। पवित्रता के सिवा कुछ न हो, केवल पवित्राई उसका नाम पीर है। चरित्राई, वाल्मीकिजी तो कहते हैं सीता के चरित्र का ही महत्त्व है। वहां रामजी को भी एक तरफ कर दिया है! अर्थात् पीराई माने चरित्र।

पीराई माने पवित्रता। पीराई माने सभी का समावेश करने की एक विशाल आजानबाहु धरती जैसी धीरज।

फिर एक बार मैं जवाबदारीपूर्वक कहता हूं कि पीराई अर्थात् माँ जानकी। और पीराई अर्थात् पवित्रता। पीराई अर्थात् चरित्राई। पीराई अर्थात् अखिलाई। पीराई अर्थात् नम्रताई, विनम्रता, सरलता। और पीराई यानी धरित्राई, धीरज। इसका नाम पीराई है पर ये पीराई पाने से पहले मेरा राम पीरों का पीर उसको पांच काम करने पड़े। जिस दिन मैं और आप ये पांच काम कर सकेंगे उस दिन हममें भी पीराई दिखने लगेगी। रामजी विश्वामित्र के साथ निकले तब पहला काम ये किये, भगवान राम को विश्वामित्र ने बताया कि ये ताड़का के संतान ही यज्ञ में बाधा ड़ालते हैं और भगवान एक ही बाण से ताड़का को दिव्य गति प्रदान करते हैं; मारते नहीं, तारते हैं। तो ताड़का आई और भगवान राम ने तुरंत एक बाण से उसे निर्वाण दिया। उसे मृत्यु नहीं, मुक्ति दी। राम तो आंख का इशारा करके भस्म कर सकते हैं। परंतु तीर सामनेवाले को बेधने के लिए नहीं है। उसको अंदर से पवित्र करने के लिए हैं। किसी की आंख तीर जैसी होती है, अंदर से पवित्र कर डालती है। किसी की वाणी ऐसी होती है कि बोलता है और हम को पवित्र कर डालता है। किसी के हाथ का स्पर्श ऐसा होता है कि वो छू दे और हम को पवित्र कर देता है। किसी की बैठक ऐसी होती है कि तीन फूट दूर बैठे उसके पास तब पवित्रता का अनुभव करने लगते हैं। छोड़ो यार! किसी का तो बैठे-बैठे स्मरण करते हैं तो भी पवित्रता का प्रवाह उमड़ने लगता है; उसके द्वारा पवित्रता आती है। फिर तुलसी कहते हैं कि ताड़का दुराशा है। और राम ने दुराशा को मारा, ताड़का को नहीं। दुराशा का अर्थ है निरंतर मेरी और आपकी ख़राब इच्छाएं। पीराई तक जाने के लिए तथाकथित पीरों को ख़राब इच्छाएं छोड़नी पड़ेगी। उनका नाश करना पड़ेगा। तो ही पीराई माला पहनाएगी। दुराशा को मारना बहुत कठिन है साहब! मांगना नहीं, आने देना चाहिए। हे परमात्मा, मुझमें किसी दिन ख़राब इच्छाएं, ख़राब आशाएं न प्रगटें। इसका नुकसान हो जाए, इससे हम बड़े हो जाएं, इसको हम दबा दें, ऐसी वृत्तियां आती हैं अर्थात् अपना पीरत्व दब जाता है। बाकी कौन पीर नहीं हैं?

पीराई को पाने से पहले दूसरा काम राम ने ये किया कि अहल्या का उद्धार किया है। पीराई मुझको और आप को तब मिलेगी जब किसी पतित को मैं और आप समर्थ करेंगे। जिस दिन हम और आप पतित को स्वीकार करेंगे, उसको समर्थ करेंगे, हारे हुए में जीवन का दीप जलायेंगे, उस दिन पीराई को प्राप्त करने का हमारा दूसरा कदम उठ गया होगा। राम ने अहल्या का उद्धार किया वो पीर तक पहुंचने का दूसरा कदम था।

जिसको समाज पतिता कहता था ऐसी एक स्त्री के द्वार पर जाकर राम ने उसका स्वीकार किया था। उसका उद्धार किया, उसे पुन: स्थापित किया, उस पत्थर में राम ने प्राणप्रतिष्ठा की। जिस दिन पुरोहित और धर्मगुरु प्राणप्रतिष्ठा नहीं करेंगे उस दिन बुद्धपुरुषों को आना पड़ेगा कि उसका उद्धार करना हमारा कर्तव्य है। हमारी ख़राब आशाएं यदि प्रभु करे कि निकल जाये। हम किसी को तिरस्कृत, हीन-दीन देखना बंद करें, सुधारना छोड़कर यदि स्वीकार करना शुरू करें। तलगाजरडा सुधारक है ही नहीं, तलगाजरडा स्वीकारक है। उसको सब को स्वीकारना है। सुधारने से कौन सुधरता है? उसे स्वीकार करो। उसको प्यार करो, प्रेम करो, स्वीकार करो। सुधारना बड़ा कठिन होता है। स्वीकार कीजिए बस। जो है उसका स्वागत कीजिए। यह पीराई का स्थान इतना महान है कि यहां कोई भी आता है। ये व्यासपीठ इतनी महान है कि यहां मुस्लिम भाई आये, दरगाहवाले भाई, यहां सब को छूट है साहब!

तो पीराई पाने का पहला कदम, दुष्ट आशाएं छोड़ दें। दूसरा कदम पतित, दीन, हीन, वंचित, हारे हुए, पत्थर की भांति जड़ हो चुके, समाज की निंदा के पत्थर खा खाकर पत्थर जैसा हो गये का स्वीकार। ये पीराई पाने के लिए पीर का दूसरा कदम है। फिर तीसरा कदम धनुषभंग। शिव का धनुष अहंकार का प्रतीक है। इसलिए तुलसीदास ने अहंकार तोड़ने की बात की। शिव का धनुष टूटे तो पीराई प्राप्त हो। और भगवान राम ने धनुष भंग किया। अहंकार तोड़ा गया, अहंकार टूटा। उसके बाद चौथा कदम है परशुराम को अवकाश। परशुराम आये, उन्हें क्रोध आया, विवाद खड़ा हुआ और उस समय भगवान राम का जो शील प्रगट होता है। क्रोध को हारकर चले जाना पड़ता है। क्योंकि अपनी आशाएं निकल गई ऐसा हमें लगता है। हम सब का स्वीकार करते हैं, अंतर नहीं रखते ऐसा जानते हैं। अहंकार का प्रश्न खड़ा होता है तब उस अहंकार को हम निकाल दें तो फिर कोई थोड़ा भी परेशान करता है तो ऐसा लगता है कि हमने इतना सब किया तो भी दूसरे परेशान करते हैं? तब हम को क्रोध आता है। परंतु क्रोध आता है तब शील द्वारा उस क्रोध को भी बोध के लिए भजन करने के खातिर निकल जाना पड़ता है, ऐसा जिसका कदम होगा उसको पीराई की वरमाला प्राप्त करने के लिए पीर का अगला कदम है। ये सब घटनाएं जो घटी ये त्रेता युग की हैं। आज राम प्रत्यक्ष नहीं हैं। तब राम को और राम की लीला को इक्कीसवीं सदी में मुझको और आपको इस तरह से

देखना पड़ेगा कि अच्छाई का हमें गुस्सा न आये। उस गुस्से को हमें भजन करते कर देना पड़ेगा। तब पीराई की ओर हमारा कदम आगे बढ़ा होगा और उसके बाद किसी विदेह के घर से हम को आमंत्रण मिलेगा कि आप अब आओ, पीराई ले जाओ। हम को निमंत्रित करेंगे। ऐसे किसी महापुरुष की ओर से आमंत्रण मिले कि पीराई तुम्हें प्राप्त हो, तुम आओ, तुम आओ, तुम आओ। अब आप पीराई के साथ फेरा लीजिए।

अंतिम दिन इतनी ही बात मुझे आप से कहनी है कि जानकी पीराई है और मेरे राम पीर हैं। वैसे तो मेरे राम पीरों के पीर हैं। और मेरी माँ जानकी पीराई की भी पीराई हैं। पर जानकी अर्थात् चरित्राई, जानकी अर्थात् पवित्राई, जानकी अर्थात् अखिलाई; जानकी अर्थात् धरित्राई, जानकी अर्थात् नम्रताई, ऐसा जो तत्त्व है वो पीराई है। पवित्रता, चारित्र्य, अखिलता का विचार और फिर भी सरलता तथा विनम्रता, धरती की तरह धीरज, ऐसी पीराईरूपी जानकी हमें कब मिलेगी? ऐसी पीराई की इच्छा करनेवाले साधक को ये चार-पांच कदम उठाने पड़ेंगे। मिथ्या आशाएं छोड़ना। सब का स्वीकार। अहंकार टूटे ऐसा नम्र प्रयास। क्रोध न आए उसका ध्यान रखना; तब किसी का आमंत्रण मिलेगा कि आप पीराई को मेरे घर से अपने घर ले जाओ। कोई बुद्धपुरुष जिस तरह अपनी कन्या को विदा करता है उसी तरह अपनी पीराई को विदा करेगा कि तुम अब इसे ले जाओ; तुम अब इसे स्वीकार करो।

'अयोध्याकांड' में समृद्धि का बहुत वर्णन है। बरसात बहुत अच्छी वस्तु है पर यदि बहुत ही बरसात आठ दिन, पंद्रह दिन हो तो हम थक जाते हैं। वैसे ही सुख और साधन बहुत अच्छे हैं पर यदि अतिरेक हो जाये तब उसमें से ही राम का वनवास जनमता है, उसमें से ही फिर दु:ख का जन्म होता है। महाराज दशरथ से कैकेयी दो वरदान मांगती है। उसमें भरत को राज और राम को वनवास निश्चित हुआ। राम, लक्ष्मण, जानकी वन के रास्ते निकले। सुमंत के रथ में बैठे। प्रजा को समझाकर प्रभु तमसा के किनारे रात रुके। और फिर भगवान राम किसी को पता न चले इस तरह रथ लेकर वहां से निककल पड़े। सुमंत के साथ शृंगबेरपुर पहुंचते हैं। यहां अयोध्या के सब लोग वापस आये हैं। सुमंत वापस आते हैं। और भगवान को गंगा पार करना है इसलिए वो केवट आता है। और भगवान ने कहा कि हम को गंगापार करना है, तब केवट ने कहा कि आपके पैर धोने दीजिए। चरण धोया। भगवान को दूसरे किनारे पर उतारता है। भगवान ने कहा, मैं तुम्हें क्या दूं? 'महाराज, आप के पिता की शपथ लेकर कहा था, उतराई नहीं लूंगा। वापस आना तब जो देंगे उसे प्रसाद स्वरूप ले लूंगा।' भगवान वहां से अब पदयात्रा शुरू करते हैं और भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुंचे और वहां रुके। और फिर दूसरे दिन वहां से किस रास्ते से हमें जाना चाहिए, भरद्वाजजी से पूछते हैं। भरद्वाज कहते हैं, महाराज, आपके लिए तो सभी मार्ग सुलभ हैं। परंतु शिष्यों को साथ भेजते हैं।

रामयात्रा आगे बढ़ती है। रास्ते में गुह को वापस भेजा और भगवान यमुना किनारे पहुंचे हैं। भगवान आगे बढ़े हैं। वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पधारे हैं। वाल्मीकि से भगवान ने प्रश्न पूछा, हमें रहने जैसी ऐसी जगह बताएं जिससे ऋषि-मुनिओं को उद्वेग न हो, किसी पशु-पक्षी को हमारे आने से पीड़ा न हो। फिर चौदह स्थान बताए। वैसे तो आध्यात्मिक स्थान हैं। फिर स्थूल स्थान बताए हैं, आप चित्रकूट पधारिए। राम-लक्ष्मण, जानकी चित्रकूट में छा गये हैं। बहुत वर्ष वहां रहे हैं। इधर सुमंत रथ लेकर वापस आये। अवधपति को समाचार दिए, अब कोई नहीं आयेगा वापस तब छ: बार 'राम' महामंत्र का उच्चारण करते-करते भगवान के विरह में राजा ने प्राण छोड़ा है। अयोध्या अनाथ हुई। भरत को पता चला कि ये सब कैकेयी ने किया है तब भरत का रोष प्रगट हुआ है। महाराज वशिष्ठजी ने सब को समझाया। महाराज दशरथ की उत्तरक्रिया हुई। एक सभा मिली कि इस राज्य का क्या करना है? भरत को कहा गया कि अब आप कुछ निर्णय कीजिए तब भरत ने इतना ही कहा कि मैं सत्ता का आदमी नहीं हूं, मैं सत् का आदमी हूं। मैं पद का आदमी नहीं, मैं पादुका का आदमी हूं। मेरा हित चाहते हैं तो हम सभी मिलकर चित्रकूट चलें, भगवान के शरण में जाएं फिर मेरा हरि जो निर्णय करे वो। पूरी अयोध्या निकली है। चित्रकूट पहुंचते हैं। पूरा जनकपुर भी आया है। दो नगरी प्रेमनगरी में बदल गई चित्रकूट में। बहुत-सी सभाएं हुई। कोई निर्णय नहीं निकलता और अंत में प्रेम ही समर्पण करता है। और भरत ने कहा-

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिअ सोई।।

आश्रितों को यह चौपाई बहुत याद रखनी चाहिए। मन, वचन, कर्म से हम किसी के आश्रित हो उसे यह चौपाई याद रखनी चाहिए। कोई तर्क-वितर्क नहीं, आप जो कहे, आपका मन जिसमें प्रसन्न हो वह आप कीजिए। आप जो करेंगे उसमें हमारा भला ही होगा साहब! और फिर निर्णय लिया गया है। खाली हाथ भरत को नहीं भेजना है क्योंकि भरतजी अवलंबन मांग रहे थे, मुझे अवलंबन दीजिए।

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।

मैंने बीच में कहा है कि 'प्रभु' शब्द का अर्थ होता है समर्थ। और पादुका तो समर्थ ही दे सकता है, अन्य कोई नहीं दे सकता है। और समर्थ के पास से कोई छीन भी नहीं सकता, खरीद नहीं सकता। उसका कोई मूल्य नहीं। यह तो कोई कृपा करे तो ही दे सकता है। पादुका जब भरतजी को मिली तब उन्हें ऐसा ही लगा कि सीता-रामजी पादुका के रूप में मेरे साथ आ रहे हैं। पादुका भरतजी ने मस्तक पर धारण किया है। और ये दोनों समाज वहां से वापस रवाना होते हैं। अयोध्या पहुंचते हैं। जनकराजा सभी व्यवस्था करके वापस विदा हुए। फिर तो पादुका से पूछ पूछकर भरतजी राजकार्य करते हैं। भरत नंदिग्राम में तपस्या करते हैं। 'अयोध्याकांड' पूरा किया गया।

'अरण्यकांड' के आरंभ में तेरह वर्ष चित्रकूट में निवास करके भगवान विचार करते हैं कि अब मुझे सभी पहचान गए हैं इसलिए स्थानांतर करना चाहिए। नहीं तो मेरा जो अवतारकार्य है उसमें रुकावट आयेगी। राम, लखन, जानकी अत्रि के आश्रम में आये। अत्रि की स्तुति की। अनसूया ने नारीधर्म समझाया। और वहां से कुंभज ऋषि के आश्रम में आये। वहां से गोदावरी के किनारे पंचवटी में प्रभु निवास करने लगे। एक दिन लक्ष्मणजी ने पांच आध्यात्मिक प्रश्न पूछे। उसका प्रत्युत्तर राम ने दिया है। शूर्पणखा आयी। दंड़ित हुई। उसने खर-दूषण, त्रिशरा को उकसाया। और प्रभु के साथ युद्ध हुआ और चौदह हजार राक्षसों ने निर्वाण पाया। तुलसी ने आध्यात्मिक अर्थ में खर और दूषण को राग और द्वेष माना है और भगवान ने साधकों के राग और द्वेष का निवारण किया है। इधर शूर्पणखा लंका गई। रावण मारीच को लेकर सीता अपहरण की योजना बनाये इससे पहले राम ने योजना बनायी। लक्ष्मण कंदमूल-फल लेने गये और सीता को कहा, आप अग्नि में समाविष्ट हो जाएं। क्योंकि आप दुर्गा हैं; आप पराम्बा हैं। आप जब तक मूल स्वरूप में मेरे साथ रहेगी, किसी राक्षस को मार नहीं सकते। परमात्मा के चरण को हृदयकमल में धारण करके सीता ने अग्नि में अपना मूल रूप रखा है। फिर तो रावण आया। उसका मृग आया। शून्यता देखकर रावण संन्यासी के वेश में आकर जानकी का अपहरण करता है। जटायु ने बीच में शहीदी प्राप्त की। रावण जानकी को लेकर अशोकवाटिका में अशोक नामक वृक्ष के नीचे उनकी व्यवस्था करता है। इस तरफ़ मारीच का उद्धार करके प्रभु ने जब आश्रम में शून्यता देखी तब लक्ष्मण से कहा, सीता क्यों नहीं हैं? और फिर प्रभु ने मानवलीला करते हुए आक्रंदन किया है। सीता की खोज शुरू हुई। जटायु ने सब समाचार दिया। परमात्मा ने जटायु का अग्नि संस्कार किया। फिर भगवान आगे बढ़े हैं। भगवान शबरी के आश्रम में पधारे। प्रभु ने नव प्रकार की भक्ति बताई। शबरी योगाग्नि में समा गई, जहां से वापस न आना पड़े ऐसे स्थान में पहुंची। राम-लक्ष्मण सीता की खोज करते

हुए पंपा सरोवर आए। वहां नारदजी मिले। बातचीत हुई और फिर 'अरण्यकांड' पूरा हुआ।

'किष्किन्धाकांड' में सुग्रीव को राजा बनाया। अंगद को युवराजपद दिया। प्रभु चातुर्मास प्रवर्षण पर्वत पर रहते हैं। सुग्रीव प्रभु का कार्य भूल जाता है। प्रभु ने थोड़ा भय बताया। सुग्रीव शरण में आया। जानकी शोध की योजना बनी। सभी दिशाओं में रींछ-वानर गये। मुख्य-मुख्य को दक्षिण में भेजने की योजना बनी। जिसके मार्गदर्शक जामवंत है, जिसका नायक युवराज अंगद है और उस मंडली में ही हनुमानजी एक सदस्य के रूप में है। प्रभु को ऐसा लगा कि कार्य तो हनुमान ही करेगा। हनुमान को मणिमुद्रिका दी है। पूरी टुकडी सीता की शोध के लिए निकली है। वन में घूमती है। कहीं जानकीजी की खबर नहीं मिलती। बहुत भूख-प्यास लगी। स्वयंप्रभा की गुफा में गये। वहां जलपान किया। फिर समुद्र के किनारे आये। वहां संपाति नामक गीध उन्हें मार्गदर्शन करता है और आखिर संपाति निर्वाण प्राप्त करता है। जानकी लंका के अशोकवन में अशोकवृक्ष के नीचे है ये निश्चित हो गया। आखिर हनुमानजी को आह्वान किया। जामवंत ने कहा कि रामकार्य के लिए ही आपका अवतार है। आप चुप क्यों है? तब हनुमानजी पर्वताकार हुए और जनमवंत की सलाह लेकर मारुति लंका जाने के लिए निकले। 'किष्किन्धाकांड' भी पूरा। 'सुन्दरकांड' का आरंभ-

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।

श्री हनुमानजी लंका में सभी बाधाओं को पार करते हुए पहुंचे। परिचय हुआ। माँ को मुद्रिका दिए। फल खाए। इन्द्रजित हनुमान को पकड़ने आया और मुष्टि का प्रहार करके हनुमानजी को मूर्च्छित किया। हनुमानजी को बांधा है। रावण के पास ले गया। हनुमानजी को मृत्युदंड की बात हुई। तब विभीषण आकर कहते हैं कि नीति ना कहती है। दूत को मारना नहीं चाहिए। कोई दूसरी सजा दो। रावण ने निर्णय किया। वानर को पूंछ पर ममता होती है, पूंछ को जला दो। हनुमानजी की पूंछ में घी-तेलवाले कपड़े लपेटकर अग्नि लगाई। हनुमानजी ने पूरी लंका को, उसकी मान्यताओं को जलाया। हनुमानजी समुद्र में गये। स्नान किया। माँ के पास गए। माँ ने चूड़ामणि दिया। हनुमानजी वापस आये। मित्रों से मिले। मधुवन में फल खाये। सुग्रीव के पास गये। सभी राम के पास आये। हनुमानजी की कथा जामवंतजी ने गाई। भगवान मिले हैं। योजना बनी। समुद्र के किनारे प्रभु ने डेरा डाला। तीन दिन प्रभु ने समुद्र के समक्ष उपवास किया। समुद्र नहीं माना तब बल का प्रयोग करने की तैयारी की, तब ब्राह्मणरूप लेकर समुद्र प्रभु की शरण में आया। समुद्र ने कहा कि प्रभु, यदि आप मुझे मार देंगे तो असंख्य जलचरों का विनाश होगा। सेतु बनाइए। यह विचार प्रभु को पसंद आया। जोड़ने का विचार राम का विचार है। 'सुन्दरकांड' पूरा हुआ।

'लंकाकांड' में सेतुबंध का पुरुषार्थ हुआ। सेतु बांधा गया। सेतु के पहले पाये पर खड़े होकर भगवान ने सेतु का निरीक्षण किया और कहा कि यह परम उत्तम धरणी है। मेरी इच्छा है कि यहां शिव की स्थापना करना चाहिए, कल्याण की स्थापना करना चाहिए। ऋषि-मुनिओं को बुलवाए। भगवान के हाथ से वहां शिव का स्थापन हुआ। ये हरिहर की एकता का प्रतीक हैं। ये सेतुबंधन एक विचार का प्रतीक है। सेतुबंध को पार करके प्रभु लंका के सुबेल पर्वत पर अपना आसन जगायें। इधर रावण अपने अखाड़े में आकर मनोरंजन करने लगा। प्रभु ने उसके महारस को भंग किया। अपने आगमन का संकेत किया। भगवान की ओर से राजदूत की तरह संधि का प्रस्ताव लेकर अंगद गये। अंततः युद्ध अनिवार्य हो गया। युद्ध हुआ। एक के बाद एक वीरगति प्राप्त होने लगे। लक्ष्मण मूर्च्छित। फिर कुंभकर्ण मैदान में आया। कुंभकर्ण को निर्वाण मिला। इन्द्रजित आया। उसको निर्वाण दिया। आखिरकार रावण के लिए प्रभु ने इकतीस बाण चढ़ाये। दस मस्तक, बीस भुजाएं; नाभि में अमृत है, वहां एक ही बाण मारा। धरती पर रावण गिर पड़ा और रावण का तेज प्रभु के चेहरे में समा गया है। मंदोदरी आई। स्तुति की। रावण का संस्कार हुआ। विभीषण को राज मिला। हनुमानजी को भेजा सीता को ख़बर देने के लिए। माया सीता थी उन्हें विलीन करके मूल सीता अग्नि में थी उन्हें वापस प्रगट किया। फिर पुष्पक विमान तैयार हुआ। निज सखाओं को साथ में लेकर राम-लक्ष्मण-जानकी पुष्पक पर आरूढ़ हुए। विमान अयोध्या की यात्रा के लिए उड़ान भरता है। लंका का रणमैदान रामजी ने सीता को दिखाया। सेतुबंध बताया। बीच में हनुमानजी से कहा कि आप अयोध्या पहुंच जाइए। भरत को समाचार दीजिए। हनुमानजी अयोध्या पहुंचते हैं। भगवान का विमान शृंगबेरपुर में उतरा। निषाद लोग मिले। 'लंकाकांड' पूरा हुआ। और फिर भरतजी को हनुमानजी ने ख़बर दी। समस्त अयोध्या को पता चल गया कि हरि आ रहे हैं।

इधर हनुमानजी ने रामजी से कहा कि विलंब न कीजिए। सब को लेकर प्रभु का विमान अयोध्या में उतरा है। समस्त अयोध्या इकठ्ठी हैं भगवान के दर्शन के लिए।

प्रभु विमान से उतरे। जन्मभूमि को प्रणाम किए। रींछ और वानर के रूप में रहे प्रभु के सखा विमान से उतरे तब मानव देह धारण करके उतरे हैं। रामकथा मानव बनाने का एक फोर्म्यूला है। रामकथा ये मानव निर्मित करने की एक प्रक्रिया है। गुरुदेव के चरणों में शस्त्रों को फेंककर भगवान राम ने प्रणाम किया। भरत और राम भेंटे तब कोई निर्णय नहीं कर सका कि दोनों में से किसको वनवास हुआ था! भगवान फिर अनेक रूप धारण करके अयोध्या के लोगों को व्यक्तिगत साक्षात्कार देते हैं। सब से पहले कैकेयी के महल में जाकर प्रभु माँ को संकोच से मुक्त करते हैं। सुमित्रा से गले मिले। कौशल्या के पास गये। जानकी को देखकर सासुओं की आंखों में आंसू आ गये। सब को स्नान कराया गया। सब को दिव्य वस्त्र और अलंकार पहनाया गया। भगवान वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों से कहा कि अब आज राज्याभिषेक कर दें। बोले, हां महाराज। कल का भरोसा नहीं करना चाहिए। एक रात ममता की ऐसी आई कि ममता ने पूरी बाज़ी बिगाड़ दी। दिव्य सिंहासन मंगवाया। पृथ्वी को प्रणाम किया। सूर्य को प्रणाम किया। दिशाओं और दिशाओं के देवताओं को प्रणाम किया। माताओं को प्रणाम किया और भगवान सिंहासन पर विराजमान। वामांग में जानकीजी। और विश्व को रामराज्य, प्रेमराज्य अथवा तो कल्याणराज्य जो कहना हो वो कहे। राजतिलक वशिष्ठजी करते हैं और तुलसी की चौपाई-

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

रामराज्य यानी प्रेमराज्य की स्थापना हुई है। बंदीजन का रूप लेकर वेदों ने स्तुति की। ब्रह्मा भवन गये। इस ओर महादेव अपने मूल रूप में कैलास से अयोध्या आकर राजदरबार में भगवान राघव की स्तुति करते हैं। भक्ति का वरदान मांगा है। भगवान शिव कैलास गये। मित्रों को भगवान ने निवास प्रदान किया है। छः महीने बीत गये। हनुमानजी के सिवाय सभी मित्रों को प्रभु ने अपना कर्तव्यधर्म निभाने के लिए वापस भेजा। एक हनुमानजी वहीं रहे। दिव्य रामराज्य का वर्णन है 'रामायण' के 'उत्तरकांड' में। गांधीजी को भी इसका सपना था, ऐसा रामराज्य आना चाहिए। समय मर्यादा पूरी हुई। ये नरलीला है प्रभु की। सीताजी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। सीता का दूसरी बार वनवास, दुर्वाद, विवाद और उपवादवाली कथा तुलसीदासजी नहीं लिखते। उन्हें संवाद से दरकार है। इसीलिए लव-कुश का नामस्मरण करके रघुवंश की कथा को वहीं विराम दे दिया है। फिर कागभुशुंडि और गरुड की कथा आती है। गरुड अंत में सात प्रश्न पूछते हैं बुद्धपुरुष से। मानों सातों सोपान के सार है ये सात प्रश्न। अथवा तो राम सातवें अवतार है और सातवें अवतार के समग्र अस्तित्व का निचोड़ हैं ये सात प्रश्न।

कागभुशुंडि ने गरुड के आगे कथा को विराम दिया। याज्ञवल्क्य ने भरद्वाजजी के सामने कथा को विराम दिया कि नहीं स्पष्ट नहीं है। कैलास के शिखर पर बैठे हुए भूतभावन महादेव ने पार्वती से कहा कि हे देवी, आप को अब क्या कहूं? बोली, महाराज, मैं कृतकृत्य हो गई हूं। तीनों आचार्यों ने कथा को विराम दिया। कलिपावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी अपने मन को और साधुसमाज को कथा सुना रहे थे। तुलसी ने भी कथा को विराम देते हुए तीन सूत्र दिए। पूरे शास्त्रों का निचोड़ देते हुए, कथा को विराम देते हुए तुलसी कहते हैं, तीन वस्तु कीजिए-

रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि।
संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

तीन ही वस्तु मेरे भाई-बहनों, पाळियाद की कथा को जब विराम दे रहे हैं तब तीन वस्तु; तीन ही सूत्र। राम का स्मरण कीजिए। जब समय मिले, राम का स्मरण कीजिए। राम अर्थात् आप जिसको मानते हैं उसको। कोई आग्रह नहीं है कि राम को। आप का जो भी इष्ट देव हो, आपका जो कोई हो। जो आपका धर्म है वो मुबारक। अपना फिर से एक वाक्य कहता हूं तलगाजरडा का। मेरी व्यासपीठ के अमुक कार्य निश्चित है। उसमें से एक कार्य है धर्मभ्रष्ट किए बिना प्यार करना। ये मेरी व्यासपीठ का एक लक्ष्य है। वैसे तो कोई मेरा आदर्श नहीं है। कोई मेरा लक्ष्य नहीं है। कहीं पहुंचना नहीं है। हेतु बिना की मेरी ये कथाएं चल रही हैं।

जानकी पीराई है और मेरे राम पीर हैं। वैसे तो मेरे राम पीरों के पीर हैं। और मेरी माँ जानकी पीराई की भी पीराई हैं। पर जानकी अर्थात् चरित्राई, जानकी अर्थात् पवित्राई, जानकी अर्थात् अखिलाई; जानकी अर्थात् धरित्राई, जानकी अर्थात् नम्रताई, ऐसा जो तत्त्व है वो पीराई है। पवित्रता, चारित्र्य, अखिलाई का विचार और फिर भी सरलता तथा विनम्रता, धरती की तरह धीरज, ऐसी पीराईरूपी जानकी हमें कब मिले? ऐसी पीराई की इच्छा करनेवाले साधक को ये चार-पांच कदम उठाने पड़ेंगे। मिथ्या आशाएं छोड़ना। सब का स्वीकार। अहंकार टूटे ऐसा नम्र प्रयास। क्रोध न आए उसका ध्यान रखना; तब किसी का आमंत्रण मिलेगा कि आप पीराई को मेरे घर से अपने घर ले जाओ।

फिर भी यदि कुछ है तो धर्मभ्रष्ट किए बिना प्यार करूं इस जगत को। आपको जो पसंद है उसको भजें। 'अल्लाहु अकबर' करें, कोई रोक नहीं है। 'बुद्धं शरणं गच्छामि' कहे, कोई रोक नहीं है। 'महावीर स्वामी अंतर्यामी' कहे कोई रोक नहीं। 'माँ माँ' रटो कोई रोक नहीं। कृष्ण, शिव मुबारक। परंतु किसी परमतत्त्व का स्मरण कीजिए।

युवा भाई-बहनों, आप फिल्म देखें अच्छी, मुझे तकलीफ़ नहीं। आप नाटक देखें। आप का चरित्र भी कोई नाटक बना सके ऐसा भी आप कर सकते हैं। आप नृत्य कीजिए, गायें, मौज करें, ओफिस संभालिएं, पढ़े, खेती करे, सब कुछ करे। रात्रि में घर आये। बालकों के साथ बैठें, प्यार से बातें करें। समाचार सुन लें। टी.वी. में जो आपको सुनना है वो। ऐसा करते-करते जब ऐसा लगे कि अब सो ही जाना है और फिर भी नींद न आये तो तलगाजरडा का बावा एक अपील करता है कि ऐसे समय आपका जो इष्ट हो उसका नाम लीजिएगा मेरे बाप! इसके सिवा कुछ नहीं। राम का स्मरण। राम अर्थात् सत्य। रामस्मरण अर्थात् सत्य। गाने की इच्छा हो तब राम को गाएं, कृष्ण को गाएं। अल्लाह को गाएं। जिसको गाना हो गाएं, झूम के गाएं। और गाना प्रेम है। जिसने-जिसने प्रेम किया है वो गाए बिना रहे ही नहीं। मीरां गाई; तुलसी गाएं, नरसिंह मेहता गाए। जिसने-जिसने प्रेम किया परम को उसने गाया है। राम का स्मरण सत्य है। राम को गाना प्रेम है। और निरंतर राम के गुण सुनना। निरंतर राम का गुण मैं और आप तभी गा सकते हैं अथवा तो सुन सकते हैं जब उसकी करुणा होगी। इसलिए आख़िर में तो सत्य, प्रेम, करुणा ये ही तीन संदेश हैं। और जीवन में इतना आनंद देगा। आठों प्रहर मौज करेंगे। मुझको तो ऐसे विचार आया करते हैं बाप! गुरु की कृपा से, आपकी दुआओं से सत्तर वर्ष कैसे व्यतीत हो गये पता ही नहीं चला! पर नाज़िर को याद करना पड़ेगा कि-

करतो'तो कोई वात मने कंई ख़बर नथी।
क्यारे थयुं प्रभात मने कंई ख़बर नथी।
'नाज़िर' ने छे ख़बर के अमर तारी जात छे,
बाकी छे कोनी जात मने कंई ख़बर नथी।

मुझको ख्याल नहीं आया साहब! नौ दिन देखते-देखते व्यतीत हो गये। सत्तर वर्ष ऐसे ही बीत गए! मुझे अब बहुत से ऐसी चिठ्ठी लिखते हैं कि निवृत्ति कब लेंगे? वो तुमको लेनी है! मेरी निवृत्ति कौन-सी? प्रवृत्ति ही कहां की है कि निवृत्ति लूं? ये मेरी प्रवृत्ति थोड़ी है साहब! ये मेरा प्राण है। ये मेरा जीवन है साहसब! ये न हो तो मैं थक जाता हूं। कहीं चैन नहीं पड़ता साहब! प्रवृत्ति की हो तो निवृत्ति आये। कोई प्रवृत्ति ही की नहीं। निवृत्ति किस बात की?

चारों आचार्यों ने कथा को विराम दिया। और इन चारों आचार्यों की कृपाछाया में बैठकर पाळियाद के इस तीर्थ में तलगाजरडा, ये व्यासपीठ; नौ दिन के लिए प्रभु का गुणगान गा रही थी। आप के साथ संवाद जोड़ रही थी; उसे जब मेरी व्यासपीठ भी विराम देने जा रही है तब सब कुछ कह दिया है तो भी ऐसा लगता है कि बहुत-सा बाकी रह गया है! पर समाप्त करना पड़ता है! नौ दिन भगवान की कृपा से विहळानाथ की इस भूमि पर स्वान्तः सुखाय आयोजित ये रामकथा जिसमें प्रभु ने जिसको यजमान के तौर पर निमित्त किया है उस पूरे परिवार, छोटे-बड़े सभी यजमानों, समाज इसमें एकत्रित हुआ, ऐसा एक सुंदर आयोजन हुआ। भगवान की कथा गाई गई। हमनें बहुत ही अनुशासन और शांतिपूर्वक नौ दिन कथा सुनी, इसकी बहुत ही अधिक प्रसन्नता लेकर बावा विदाई ले रहा है। समस्त आयोजन के लिए, सुचारु व्यवस्था के लिए भी मैं अपनी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। विहळ से निर्मल तक की पूरी परंपरा को मैं स्मरण करता हूं। आशीर्वाद या तो रघुनाथ दे या तो विहळानाथ दे। व्यासपीठ पर बैठा हूं इसलिए आप सभी के लिए हनुमानजी के चरणों में प्रार्थना करता हूं कि आप सभी संपन्न रहे। परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि आप सभी खूब प्रसन्न रहे। और किसी न किसी परमतत्त्व में हम सभी प्रपन्न भी रहे, शरणागत रहे। खुश रहे बाप! खुश रहे बाप! खुश रहे बाप!

नौ दिन की 'रामकथा' का जो सुकृत एकत्रित हुआ है। हम सभी वर्तमान गद्दीपति पूजनीया निर्मळा माँ के साथ हम सब मिलकर ये फल अर्पण करें। किसको अर्पण करूं? आप सभी इसके अधिकारी है। सामान्य स्वयंसेवक भी इसका अधिकारी है। रोज सुबह स्वच्छता का झाडू घूमानेवाला भी इसका अधिकारी है। मुख्य यजमान भी इसके अधिकारी हैं। सभी लोग इसके अधिकारी हैं परंतु आप सभी प्रसन्न होंगे ऐसी जगह हम सब यह फल अर्पण कर दें। फिर एक बार विहळ से लेकर निर्मळ परंपरा तक सब का स्मरण करके जो मूल पुरुष बैठा है इस समस्त परंपरा में, उस मूल पुरुष के चरणों में हम सब मिलकर नौ दिन की रामकथा 'मानस-पीराई' विहळानाथ के चरणारविंद में समर्पित करते हैं, हे पीर, आप के चरणों में ये समर्पित है। क्योंकि आप की समस्त परंपरा में रामउपासना, रामकथा, चौपाईयां दबी पड़ी है इसलिए मैं यह आपको अर्पण करता हूं।

मानस-मुशायरा

शबभर रहा है खयाल में तकिया फ़कीर का।
दिनभर सुनाउंगा तुम्हें किस्सा फ़कीर का।

•

हिलने लगे हैं तख्त उछलने लगे हैं ताज,
शाहों ने जब सुना कोई किस्सा फ़कीर का।

– विजेन्द्रसिंह परवाज़

वो जहां भी रहेगा रोशनी लुटायेगा।
चरागों को अपना कोई मकां नहीं होता।

– वसीम बरेलवी

सोचिए अब इतने चारागार कहां से आयेंगे?
मुस्कुराकर अपने कुछ बीमार कम कर दीजिए।

– राजेश रेड्डी

शजर तब्दील हो गये पीर में।
बहुत बारिश हुई कल गीर में।

–मिलिन्द गढवी

वो मुस्कुराकर जब देखते हैं तो तबीयत सुधर जाती हैं,
इतना तो बताओ कि ईश्क करते हो कि इलाज करते हो?

क्वचिदन्यतोऽपि

साधु स्वयं एक समाधि है

पूज्य ध्यानस्वामीबापा एवोर्ड अर्पण के निमित्त मोरारिबापू का प्रेरक उद्‌बोधन

सब से पहले अपनी सभी सेवाधर्मी आध्यात्मिक संस्थाओं में जितनी भी समाधियां हैं उन तमाम चेतनसमाधिओं को प्रणाम करके जिस संस्था में हम सब बैठे हैं उस पूज्य ध्यानस्वामीबापा की समाधि को भी मेरा प्रणाम है। वैसे तो लगभग सब कुछ कहा गया है परंतु नौ वर्ष से इस स्थान के द्वारा सेवा और स्मरण में अपना सब कुछ समर्पित करनेवाली अपनी सेवाधर्मी अध्यात्म संस्थाओं की वंदना करने का सायला की कथा के समय एक विचार प्रगट हुआ। विचार विनिमय हुआ। और आज हम इस विवेक विचार को लेकर चलाला दानबापू की जगह को प्रणाम करने पहुंचे हैं। उस संस्था की वंदना और उसके आदिपुरुष परम पूज्य दानबापू का स्मरण करके वर्तमान गद्दीपति पूज्य बापू-वलकुबापू उन्हें मेरा प्रणाम है। पूरी परंपरा को मेरा प्रणाम, जिन्होंने हमारी वंदना स्वीकार की है। हमें ऐसा लगता है कि हम किसी की वंदना करते हैं और सामनेवाला मनुष्य वंदना न स्वीकार करे? नहीं भी स्वीकार करे। ऐसा भी हो सकता है। अर्थात् कभी वंदना न भी स्वीकार की जाती हो। हमारे हरीशभाई इन सब सेवा में ये सब करते हैं इसलिए मुझको कुछ विचार करना ही नहीं होता। उन्होंने बापू से प्रार्थना की थी। मैंने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए दूरभाष पर-फोन पर बात की। और बापू ने इतना ही कहा कि बापू, ध्यानस्वामीबापा का आशीर्वाद मैं माथे पर चढ़ाने आ रहा हूं। ये आपकी परंपरा का अनेक प्रकार के विवेक का जो परिणाम है, इसी तरह एक वचन में यह प्रस्तुति थी। ऐसे हम सब के पूजनीय बापू की वंदना जब हम कर रहे हैं तब बापू को मेरा प्रणाम। साथ ही साथ हम सब की बहुत ही प्रसन्नता का विषय है कि इस बार के कुंभ में संगम के तट पर निर्मान अखाड़ा के द्वारा वेदमंत्रों के साथ अनेक अखाड़ों के आचार्यों की हाज़िरी में जिनका महामंडलेश्वर पद द्वारा अभिषेक किया गया ऐसे अपनी एक समर्थ ग्रामीण जगह, विहळानाथ की जगह और उसके वर्तमान पीठाधीश हम सब के पूजनीया निर्मळा माँ का-१००८ महामंडलेश्वर निर्मळा माँ का-महामंडलेश्वर पद पर जो अभिषेक हुआ उसे मैंने अपनी आंखों से देखा है। वे स्वयं यहां बिराजे, पधारे हैं। माँ, विहळानाथ की समस्त परंपरा को पग लागकर मैं आपको प्रणाम करता हूं। इसी तरह से हमारा अखेगढ़, हरियाणी हमारा समाज का मंडल, उसके महंत हमारा एक मंडल, उसके महंत तो बापू थे ही परंतु पूज्य वसंतदासजीबापू को उसी अखाड़ा द्वारा महामंडलेश्वर पद समर्पित हुआ। उसी तरह जिसका मैं साक्षी बना। पहले ये प्रसंग देखा, फिर माँ का प्रसंग देखा। अर्थात् १००८ महामंडलेश्वर श्री श्री परम पूज्य वसंतदासजीबापू, गुरु श्री हरिवल्लभदासजी बापू, अक्षय गढ़, उन्हें महामंडलेश्वर पद प्राप्त हुआ उसके निमित्त मेरा उन्हें प्रणाम हैं। मेरी खूब-खूब प्रसन्नता है।

सायला स्थान के परम पूज्य महंत श्री दुर्गादासबापू, उनको मेरा प्रणाम। कमीजड़ा भाणतीर्थ जगह के महंतबापू, उनको मेरा प्रणाम। दूधरेज संस्था के अपने पूजनीय महामंडलेश्वर कणीरामबापू, वो स्वयं हाजिर नहीं रह सके पर लघु महंत श्री को भेजे हैं। दूधरेज की परंपरा को और आप को मेरा प्रणाम। सामने बिराजमान हैं हमारे पूजनीय महामंडलेश्वर जगजीवनदासजीबापू, जूनागढ़ से पधारे हैं। सताधार से पधारे बापू, बड़े बापू का आशीर्वाद लेकर आये हैं। अर्थात् आप सभी पूजनीय संत-महंतगण हमारी प्रसन्नता में वृद्धि करने और आशीर्वाद देने के लिए आये हैं। आप सभी को मेरा प्रणाम है। आप सभी हम लोगों को इसी तरह से आशीर्वाद देते रहिएगा। हमारा सेंजळधाम का ट्रस्ट, त्रिभुवनबापू से लेकर सभी ट्रस्टी बहुत चुपचाप रहकर उन्हें आती है ऐसी सभी सेवाएं करते रहते हैं। उनको भी मैं पग लागता हूं। ध्यान सेवा के हमारे युवा लड़के, वे भी रात-दिन मेहनत करते हैं। उन्हें भी अपना बहुत प्यार देता हूं। और पूरा हमारा सेंजळधाम गाम। ये क्षत्रिय, ये सूर्यकुल की संतानें सभी परिवार खड़े पैर तैयार रहते हैं। अन्य समाज के भाई-बहन भी आते हैं, उन सब को खूब-खूब साधुवाद देता हूं।

'रामचरितमानस' में साधु, संत, सेवक, दास और भगत ये पांचों शब्द जिन्हें 'रामायण' का अभ्यास है वे सभी जानते हैं, पर्याय हैं। कभी तुलसी सेवक कहते हैं; कभी संत कहते हैं; कभी साधु कहते हैं; कभी दास कहते हैं; कभी भगत कहते हैं। बापू ने कहा कि हमारे स्थान भगतों के स्थान हैं। और साधु से हम आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। यह आपकी उदारता भी है और आपने जो मूल को याद किया है उसके बदले में मैं आपको प्रणाम करता हू।

पंपा सरोवर का संतहृदय जैसा पानी है साहब! और उसके किनारे देवर्षि नारद वीणा बजाते-बजाते पधारते हैं। और उन्होंने भगवान राम से पूछा कि आपकी दृष्टि से साधु कौन कहलायेगा, उसके लक्षण मुझे कहिये। और भगवान राम साधु के लक्षणों की चर्चा करते-करते जब समापन करते हैं तब शब्द प्रयुक्त करते हैं वो मुझे कहना है। बापू ने कहा, लोग हमको भगतडा कहते हैं! बापू ने कहा कि हम भगत की जगह हैं। पर भगवान ने क्या कहा, उसे मुझको आपको कहना है-

कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।

हे नारद, साधु के गुण इतने हैं कि शेष और सरस्वती भी वर्णन नहीं कर सकते। ऐसा जब राम ने कहा तब नारदजी ने वीणा रखा और ठाकुरजी के पैर पकड़े। किस लिए?

अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे।।

साधु के लक्षण क्या हैं ये पूछा उसे विराम दिया और नारद ने पैर पकड़ के कहा कि ऐसा दिनबंधु कौन होगा? भगत के गुणों का अपने मुख से वर्णन करता है। भगत होना बहुत कठिन है बाप! बहुत ही कठिन है। मेरा अभी-अभी का एक सूत्र मानो, या जो कहो, जो आता है बोल डालता हूं। हैरान हुए बिना हरिभजन नहीं हो सकता है साहब! जिसको हैरान होने की तैयारी हो उसको ही हरिभजन के मार्ग पर कदम बढ़ाना चाहिए। मतलब भगत की महिमा बहुत बड़ी है साहब! 'भगत गुन निज मुख कहे।' गुरुकृपा से थोड़ा बोल रहा हूं इसलिए साधु के लक्षण थोड़े भिन्न-भिन्न भी हैं। परंतु तत्त्व सब एक है। पर यह जो स्वीकार है वो सलाम के योग्य है। नहीं तो आज कौन स्वीकार करता है साहब! उसमें भी हम लोगों को तो सब बावा कहनेवाले लोग हैं! मार्गीबावा कहनेवाले लोग! स्वीकार कौन करता है? परंतु ये जो स्वीकार है। इन सब को स्वीकार किया। ये माँ (निर्मळा माँ) आंसू पोंछती हैं, सुख-दुःख पूछती हैं। बापू की पूरी परंपरा बढ़ते रहना, हंसते रहना, कुछ करते रहना है। इसीमें पूरी यात्रा चली। और ये भाणबापू की जगह, ये सायलाबापू की जगह, ये दूधरेज की जगह, तो एक जैसा ही समान काम सभी स्थानों से लगभग हो रहा है। और इसीलिए मैंने बहुत समझकर कहा। और इसमें थोड़ा भी विवेक न मानना। मेरे हृदय की प्रवृत्ति मानना कि ध्यानस्वामीबापा की समाधि को पग लागने से पूर्व ये जितनी समाधियां हैं उसे मोरारिबापू पहले पग लागते हैं। क्योंकि सब ने यही कार्य किया है।

मुझको तो बहुत बार ऐसा लगता है; ये शब्द बहुत अच्छा है। शायद मैंने गत साल भी कहा था कि अब अपनी समाधियों के आगे 'चेतन' शब्द लिखने की जरूरत नहीं है। समाधि जड़ होती ही नहीं। चेतन होती है वही समाधि होती है। वो जड़ क्यों होगी साहब? नहीं तो धूप क्यों होती? नहीं तो प्रेरणा क्यों मिलती? पांच मिनट आंखे बंद करके बैठे और नया विचार क्यों आता? ये सब है। चेतन समाधि; अर्थात् 'चेतन' लगाते हैं हम और वो सुंदर लगता है। पर समाधि यानी चेतन समाधि। विशेषणमुक्त समाधि। परंतु जड़ है ही नहीं। और मेरे साधु सभी जानते हैं कि मैं किसी भी साधु के घर जाता हूं और उसके दरवाजे पर यदि बुज़ुर्गों की समाधि होती है तो उस वर्तमान बुज़ुर्गों से पहले मैं समाधि को पग लागता हूं। क्योंकि यहां कोई बैठा

है। वह जड़ नहीं है। और उसमें भी समग्र जीवन और समग्र परंपरा गंगधारा की भांति सेवा में ही बही हो तब तो समाधियां जड़ हो ही नहीं सकती। 'चेतन' लिखें ये हमें अच्छा लगेगा पर समाधि अर्थात् समाधि। और ये समाधि किस-किस क्षेत्र में, किस-किस प्रक्रिया से प्राप्त होती हैं इनके अपने शास्त्रों में अनेक उदाहरण हैं। अनेक मार्ग हैं। कहां से प्रारंभ करूं? शंकर से शुरू करूं? इन सभी समाधियों की वंदना इस समाधि द्वारा हो रही है तब 'समाधि' ये शब्द केन्द्र में रखकर कहूं तो कहां से पूरी परंपरा है? कौन-सी प्रक्रिया है इस समाधि तक पहुंचने की? इसमें शंकर से शुरू करूं तो समाधि तक पहुंचने की एक प्रक्रिया है स्वरूप अनुसंधान। जिसने-जिसने निज स्वरूप का अनुसंधान किया है वो मनुष्य समाधि तक पहुंचता है।

संकर सहज सरूपु सम्हारा।

तब तो-

लागि समाधि अखंड अपारा।।

फिर शिव तो आदि हैं। उसके बाद समाधि की प्रक्रिया कितनी सारी आई होगी अपने यहां! पर सीधे वहां से पनहा काट कर सीधे पतंजलि के पास आऊं तो 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः समाधि।' पतंजलि ऐसा कहते हैं कि चित्तवृत्ति का निरोध हो उसे योग कहते हैं। और उन्होंने वो सात-सात सीढ़ियां चढ़ने को कहा-यम, नियम, आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। ये कुछ प्रक्रिया भी समाधि की है। तीसरी प्रक्रिया में भगवान बुद्ध तक जाता हूं। बुद्ध को पग लागता हूं। तो वे समाधि की बात करते ही नहीं। वे तो केवल ध्यान की ही बात करते हैं कि ध्यान तक पहुंचना है। और उसमें ही वो सब कुछ पूरा करते हैं। अपनी संस्थाओं में, अपने स्थानों में आता हूं, अपनी वैष्णवी परंपरा में आता हूं तो चैतन्य ऐसा कहते हैं कि मैंने योगमार्ग देख लिया है, मैंने सब कुछ देख लिया है। लेकिन दोनों हाथ उठाकर हीरनाम का संकीर्तन करता हूं, ये मेरी समाधि की प्रक्रिया है। चैतन्य ऐसा कहते हैं। नरसिंह मेहता तक जायें तो वे कुछ अलग ढ़ंग से कहते हैं। गंगासती तक जायें तो वे कुछ अलग ढ़ंग से कहती हैं। फिर वैष्णव परंपरा में जायें अपने स्थानों में तो वहां समाधि की एक प्रक्रिया ऐसी भी बताई है कि स्मरण करते-करते समाधि। मनुष्य स्मरण करता जाता है और समाधि का अनुभव करता है यह भी एक प्रक्रिया अपने यहां बताई है। और जिन स्थानों की वंदना हम करते हैं, मुझे बहुत जवाबदारीपूर्वक कहना है कि सेवा का मार्ग भी समाधि की एक प्रक्रिया है। फिर वो सेवा अनेक क्षेत्रों की सेवा जिस समय जो सेवा करने को देशकाल आह्वान करे। इन सभी स्थानों ने ऐसी सेवाएं की हैं। और केवल सेवा भी मनुष्य को समाधि की यात्रा करा सकता है और इसीलिए हम उन समाधियों की परिक्रमा करते हैं और प्रणाम करते हैं। और कदाचित् कोई सेवा न कर सकता हो तो रमण महर्षि ने कहा कि मैं कोई नेत्रयज्ञ करने नहीं जा सकता। मैं तो अरुणाचलम् के कोने में बैठकर केवल अपने भजन में लीन रहता हूं। बस, यही मेरी सेवा है, ऐसा वो कहते हैं।

अंत में समाधि का बहुत सरल उपाय है वो भजन है। भजन द्वारा समाधि। मनुष्य भजन करते-करते समाधि तक पहुंचता है। यह भी एक अद्‌भुत यात्रा है। और अंत में भजन तो बाद में पर साधु स्वयं एक समाधि है। लेने की तो बाद में आती है। लेने की सभी प्रक्रिया बाद में। पर साधु ये स्वयं समाधि है, ऐसा मानने लगा हूं। साधु होना ये समाधि का होना है। साधु उपाधि में हो तो वो साधु नहीं, ऐसा तो मुझसे नहीं कहा जाएगा! परंतु तो भी उपाधि में हो वो साधु कैसा यार! और अब तो साधु डंकी तक की उपाधि करता है, मेरे पास डंकी नहीं है! पर अभी भाई डंकी-पंप के लिए तू साधु नहीं हुआ है! तुझको तो पाताल को तोड़कर भजन की निर्झरणी बहानी है। तू इसके लिए साधु बना। और डंकी-पंप के लिए क्यों जिसकी-तिसकी दाढ़ी में हाथ डालता है! अरे! साधु स्वयं समाधि है।

भगवान बुद्ध का एक वाक्य मुझे कहना है। बुद्ध किसी दिन किसी से नहीं कहते थे कि तू शुभ कर्म कर। ये कहना चाहिए न? और हम सब को कहते हैं, अच्छा करो, अच्छा करो। ये तो कहना ही चाहिए। पर बुद्ध बिलकुल विरुद्ध में हैं। किसी को नहीं कहते कि शुभ कर्म करो। एक दिन आनंद ने तथागत से कहा कि आपकी टीका हो रही है। आप रजवाड़ों के गुरु हैं। भले आप गुरुपद या ये सब नहीं स्वीकार करते हैं परंतु सभी आपको नमन करते हैं। और आप शुभ कर्म की ना कहते हैं? शुभ कर्म करना चाहिए, ऐसा हम कहते हैं तो आपको अच्छा नहीं लगता। इसका क्या अर्थ है? तब बुद्ध की स्पष्टता बहुत सुंदर है। वो ऐसा कहते हैं कि शुभ कर्म तो चोरी करके भी हो सकता है। नहीं होता? आदमी चोरी करे और गौशाला बनवा दे। शुभ कर्म। हज़ारों और लाखों लोगों की मृत्यु जिसके द्वार पर होती है ऐसी एक संस्था विदेश में अपनी संपत्ति में से नोबल देती है! है न? हकीकत है न? उसमें भी फिर कलियुग का चमत्कार देखिए! ये नोबल भी शांति के लिए दिया जाता है! शांति के लिए नोबल है! जिसका पैसा ही बारूद-गोले का है! यानी एक दिखता तो शुभ कर्म ही है। पर शुभ कर्म तो चोर भी कर सकता है। भगवत्कथा सभी

करते हैं पर कोई भी शुभ कर्म में कुछ तो, कुछ न कुछ अन्यथा होता ही है। केवल इतना लिख रखिए। अर्थात् शुभ कर्म, कोई सम्मान करनेवाला मनुष्य कुछ अच्छा ही करता है पर अंदर कुछ अलग ही होता है। सब के बीच कहना पड़ेगा न कि बहुत अच्छा करते हैं। आप बहुत अच्छे हैं। पर अंदर कुछ ऐसा अलग होता हो तब शुभ कर्म वह कोई अलग वस्तु है। इसलिए बुद्ध ऐसा कहते कि शुभ कर्म मत करो। साधो हो जाओ। क्योंकि साधु होगे तो आपके पास अशुभ कर्म आ ही नहीं सकता। शुभ कर्म का दायित्व उसका अहंकार आपको लेना ही नहीं पड़ेगा। कर्म की जाल आपको पकड़ ही नहीं सकती। इसलिए साधु बनो। इसीसे साधु होना समाधि लेने के बराबर है। अब हमें क्या है; जीवित साधु हो न तब उसे चेतन समाधि नहीं कहते। अब चला गया हो न उसकी चेतन समाधि कहते हैं। पर जो जीवित है उसके चैतन्य का मूल्य कीजिए, क्योंकि साधु का होना ये समाधि होने जैसा है, ऐसा तलगाजरडा स्पष्ट मानता है।

मैं गतकल कह रहा था वसंतदासजीबापू, अपनी सभी समाधियां; मैं बहुत हृदयपूर्वक कहता हूं कि चाहे मैं चलाला जाऊं तो ठाकुरजी का दर्शन तो करता ही हूं। माळा का दर्शन करता हूं पर उस समाधि को पग लागने का मुझे विशेष आनंद होता है बापू। मैं वहां जाता हूं विहळानाथबापू के स्थान पर, जहां-जहां मैं जाता हूं, मेरी दृष्टि में पहले समाधि आती है। और इन समाधियों का रिनोवेशन, इन समाधियों का जीर्णोद्धार किस तरह से होगा? यहां एक चबूतरा था। और हम सब जानते हैं कि थोड़ा कुछ टीला था। और माटी की ध्यानस्वामीबापा की समाधि थी। और एक जामुन का पेड़ और एक नीम थी। और ये हमने देखा है। अब देशकालानुसार विकास हो जाने से और आप सब के आशीर्वाद से ऐसा रूप है। पर यह तो एक व्यवस्था बढ़ रही है। साधना नहीं बढ़ती है। और साधना की पीठिका नहीं होगी और व्यवस्था चाहे जितनी बढ़ेगी वो व्यवस्था कितनी टिकाऊ होगी? बापू, मैं बहुत हृदयपूर्वक कहता हूं कि मुझको समाधि की ओर खूब अहोभाव है। और सभी समाधियां मानो मोरारिबापू को बुला रही है ऐसा लगता है। ऐसा मुझे भासित होता है। इसलिए व्यवस्था करना ही चाहिए। देखिए हमने किया है जितनी हो सकती थी उतनी। इसलिए मैं आज ही कह रहा था कि भाई, अब इसमें कुछ बढ़ाया नहीं जा सकता है हां। तो मुझसे फिर कहे कि बापू, वो आप जितना करेंगे अर्थात् जितनी व्यवस्था बढ़ायेंगे उतनी कम ही पड़नेवाली है। मतलब व्यवस्था के लिए बराबर है। परंतु साधना का हर्ज करके व्यवस्था नहीं होनी चाहिए। साधना मूल है। इन सभी समाधियों में साधना रही है। हम सब जैसे वक्तव्य में कहते हैं, इन सब ने तो कितना कुछ किया है। मुझको बापू आप की ये बात बहुत अच्छी लगी कि खिसकते रहे, खिसकते रहे, खिसकते रहे। ये खिसक जाना, हां, मणका खिसक जाता है। ये सब साहित्यकार कहते हैं और कोई खिसकता नहीं है साहब! क्यों खिसकना? किंतु सब कुछ छोड़ो और-

तारुं कशुं न होय तो छोड़ीने आव तुं।

मिस्कीन का एक शे'र है कि-

तारुं कशुं न होय तो छोड़ीने आव तुं।
तारुं ज बधुं होय तो छोड़ी बताव तुं।

अर्थात् ये खिसकते रहने की जो बात है। इसीसे समाधियों में साधना पड़ी हैं। मतलब इसका रिनोवेशन कैसे होगा? यहां हम लोन करेंगे। अभी भी दो-तीन रूम बनाने की बात आई है। और देनेवाले तो निकलेंगे ही। हम सब को काम पर लगानेवाले तो निकलेंगे ही! क्योंकि उसको हमें धंधे पर लगाना है कि बापू, आप ईंटों की ट्रकें गिना करो! और सिमेन्ट हाथी की लाये या किसकी लाये ये देखते रहो! और आप ये सब गिनते हैं! मेरे विष्णुदादा देवानंदगिरि महामंडलेश्वर संन्यासी जगत के भूषण हैं साहब! ये कोई मैं संमत नहीं हूं कि उन्होंने कैलास आश्रम का विकास नहीं होने दिया या ये कहीं आज के संदर्भ में हम संमत नहीं हो सकते, पर विचार को तो पग लागना ही पड़ेगा। उन्होंने ऐसा कहा कि मैं महामंडलेश्वर इसलिए थोड़े हुआ हूं कि मैं यहां ट्रकों की गिनती करूं? करे ट्रस्टी उन्हें करनी हो तो! मेरी तो अवधि पूरी हुई और उत्तरकाशी चला! फिर उतरेगा वो दूजा!

मेरे कहने का अर्थ है कि व्यवस्था तो सब करनी ही पड़ेगी। और कर रहे हैं। और लोग हमें अपनाते हैं। यह अपनानेवाले का सद्‌भाग्य है। वो कहीं हम पर मेहरबानी नहीं करते हैं। हां, उन्होंने किसी समाधि के आशीर्वाद से कमाया है और इसीसे देने आते हैं। नहीं तो कोई एक रूपया भी सगे पुत्र को नहीं देता साहब! साधु को तो वट में ही रहना चाहिए बापू। हां, साधु को दो काम करना चाहिए। या केवट बनना चाहिए या वटवाला। सेवा करता है तब मेरा साधु केवट होता है और वट होता है तब किसी की ताकत नहीं कि उसे कोई पकड़ सके! इसलिए देने आते हैं। और उसे आना ही पड़ेगा न? नहीं तो अपने सब प्रसंग कैसे होते? दान तो आनेवाला ही है। दानबापू के स्थान में दान न आये ये कैसे हो सकता है? जहां दान ही संज्ञा है, जहां दान ही विशेषण है, जहां दान की ही विचारधारा चलती है अपने सभी स्थानों पर। परंतु मेरा कहना ये है कि आनेवाली सभी पीढ़ियों में भजन बढ़े यही जरूरी है। फिर ज्योति जगती हो तो उसमें तेल नहीं भरे तो भी चलेगा। पर भजन

का जितना तेल भरेगा, साधना और तपस्या का जितना तेल भरेगा उतनी ये समाधियां हमें अधिक आशीर्वाद देगी। ऐसे समाधिस्थान में समाधिवाले ने हमें ऐसा कुछ सुझाया और यह एक प्रक्रिया शुरू हुई। उस परंपरा में बापू पधारे हैं। हम सभी को आनंद और आशीर्वाद दिए। और पुन: मेरा तो बिलकुल स्पष्ट कहना है, प्रत्येक फंक्शन में कहता हूं कि ये चलता है तब तक चलता रहेगा। और फिर नहीं चलेगा तो नहीं चलेगा। बंद कर देंगे हम। फिर जो-जो संस्था रह जाये वो ऐसा न कहें कि बापू हम रह गये! रह गये तो रह गये! हम को देखो न बिलकुल रह गये! देखो न जैसे के तैसे कोरे का कोरा खड़े हैं! कुछ नहीं लेना-देना! बिलकुल रह गये हैं! इसलिए हम कहेंगे कि नहीं खेलते भाई अब! पर क्यों नहीं पहुंचायेगा?

भोजल के भरोसो जेने त्रिकमजी तारशे तेने।

है न भरोसा उसे? और हमारे तुलसी कहते हैं-

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सुबेद प्रकासा।।

मैं अपनी कथाओं में कहता हूं और मुझको इन सब पर ममता खूब है अपने श्रोताओं पर। अब ममता तो बंधन है। शास्त्रों में बंधन ही है ममता। जहां 'रामचरितमानस' में ममता को अंधेरा कहा है, हां। और फिर कहते हैं कि 'सब करि ममता ताग बटोरि।' यह बात आई है। बाकी ममता तो नुकसानकारक है। फिर भी मैं पूरे समाज को कहता हूं कि इन अपने श्रोताओं पर, अपने इस समाज पर, अपनी इस सुंदर पृथ्वी पर मुझे ममता है। और ये बंधन है तो बंधन। अपने यहां बहुत गाया गया है कि 'मारी ममता मरे नहीं एनुं मारे शुं करवुं?' मनरूपी ममता को मारो। ममता को बहुत ही फटकारा गया ये बात भी सही है। पर थोड़ी-सी ममता इन स्थानों ने रखी है जगत में। अपने मुक्ति के भोग पर रखी है ममता बापू! आपने मुक्ति को सहज जाने दिया। पर ये समाज जो दीन-दु:खी है उसकी तरफ ममता रखे बिना सेवा नहीं हो सकती साहब! ममत्व जगाना पड़ेगा। बाप! साधु ने समाज की ओर ममता रखी है। उसने अपने आप को बहुत ही कम सहेजा है। और समस्त जगत को अपनी बाहों में भर लिया है। ऐसा साधु, उसका होना समाधि है। उसे किसी प्रक्रिया की जरूरत नहीं है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, शुभ कर्म करने की किसी को सूचना नहीं देता। मैं कहता हूं, तू साधु बन तो बात पूरी। हम लोग वलकुबापू के यहां एक बार मेहमान बने थे मैं और अमरदासबापू। और फिर हम लोग कानजी भूटाबापा के यहां; अमरदासबापू और मैं तथा गिरनारी बापू, कानजीबापा के यहां बैठे थे। और उसको क्या हुआ, फेंटा निकाल दिया! नंगे पैर! कानजीबापा मुहल्ले में उतरे। शाम के पांच बजे का समय था और गरबी ली-

साधा रे आव्या,
आज मारा घरे आनंदनी घड़ी...

'साधा' कितना अच्छा शब्द है! मेरे घर साधा आये। ऐसा साधु। इसलिए हमें ये शब्द लगा है उसका भी गौरव है। परंतु निभाना बहुत कठिन है। पर साधुपन ये सब का मूल है। और वो स्वीकार किया जाता है तब मुझको अधिक आनंद होता है। दो-टूक स्वीकार होता है। पर 'मानस' के आधार पर साधु, भगत, सेवक, दास ये सब पर्याय हैं। इसमें कोई ऊंचा, कोई नीचा नहीं है। अर्थभेद से लक्षण थोड़े-थोड़े अलग होते होंगे। पर शेष सब एक ही है।

मेरे कहने का अर्थ इतना ही है बाप! कि इस समाधि की महिमा है। इन जीती-जागती ज्योतियों की महिमा है। अपने ग्रामीण स्थानों की महिमा है। और बहुत हृदयपूर्वक कहता हूं; इसमें थोड़ा भी कहीं विवेक या शिष्टाचार मत मानना। पर आप सब आकर सेवाधर्म की हम लोगों को अधिक से अधिक प्रेरणा प्रदान करते हैं। पर सेवाधर्म में दूसरा कुछ करने की जरूरत नहीं कि ऐसी कंठी पहनो, ऐसी माला पहनो, ऐसा तिलक लगाओ, मुंडन कराओ, शिखा रखो, ऐसा करो। इसमें कुछ नहीं आयेगा। सेवा शुरू कर दे। स्मरण में भी कहीं ऐसे नीति-नियम है साहब कि आपको माला फेरने के लिए मुंडन करना पड़ेगा; आपको अमुक प्रकार का तिलक करना पड़ेगा। अमुक प्रकार का कपड़ा पहनना पड़ेगा। माला भी न लो तो भी रोक नहीं है। मन में शुरू कर दो भजन। ये कोई नियम लागू नहीं पड़ता। मुझको कुंभ के मेले में भी एक जगद्गुरु ने कहा था, वैसे व्यंग में कहा था! इतने अधिक संत बैठे हो और मेरी तरफ सब का भाव-वात्सल्य है इसलिए मुझको बीच में बैठाया। और व्यंग में जगद्गुरु ने कहा था। अभी है स्वयं। मेरी तरफ इतना आदर पर उन्होंने व्यंग में ऐसा कहा कि ये मोरारिबापू शिखा नहीं रखते! भगवा पहना दो! हं! मैं आपको श्वेत पहनाने निकला हूं। आप मुझे भगवा पहनाने कि कहां बात करते हैं साहब! मन में कहा। मैंने कहा उतरते-उतरते। मैं कोई जवाब ही न देता। सीधी बात है। मुझसे कहे, बापू, बुरा नहीं लगा न? पर मैंने उन्हें मन में कहा कि शिखा रखने की जगह तो होनी चाहिए न! यहां जगह ही नहीं है। शाखा रिप्लान्ट होती है; शिखा रिप्लान्ट नहीं होती!

(पूज्य ध्यानस्वामीबापा चेतन समाधि स्थल, सेंजळधाम (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य : दिनांक १९-०२-२०१९)

सांध्य-प्रस्तुति

॥ जय सीयाराम ॥